आत्मा और परमात्मा की पहचान

आत्मा और परमात्मा की पहचान

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव भवन
आबू पर्वत (राजस्थान)

प्रकाशक

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय

पाण्डव भवन, आबू पर्वत (राजस्थान)

स्वयं परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा
द्वारा जो ज्ञान दिया और दे रहे हैं,
उसी के आधार पर यह पुस्तक
लिखी गई है।

प्रकाशक:

साहित्य विभाग

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी

ईश्वरीय विश्वविद्यालय,

मुद्रक :

ओमशान्ति प्रैस, ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन, आबू रोड.(राज.)

प्राक्कथन

मनुष्य और भगवान् में अन्तर

मनुष्य अल्पज्ञ है और बहुत-सी परीस्थितियों में असमर्थ भी है। मनुष्य की उस अवस्था पर विचार कीजिए जब वह छोटा-सा शिशु होता है। तब वह बोलना भी नहीं जानता अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता। अपने भोजन तथा अपनी प्राण-रक्षा के लिए भी वह दूसरों पर निर्भर करता है। बड़ा होने पर संसार में अनेक प्रकार की विकट परिस्थितियों का सामना करना उसके लिए कठिन हो जाता है और अन्त में जब काल आता है, तब उसके सामने भी उसका बस नहीं चलता। इतिहास-प्रसिद्ध सिकन्दर और नेपोलियन तथा आधुनिक काल में अमेरीका के राष्ट्रपति कैनेडी महति सैनिक बल के स्वामी होते हुए भी 'काल' के सामने कैसे असमर्थ थे —यह सभी को विदित ही है। मनुष्य जो भूलें कर बैठता है, उसका दुष्परिणाम भी उसे भोगना पड़ता है और पिछली की हुई भूलें भी उसके सामने आती हैं। साधु-सन्त, आचार्य-पण्डित, सभी अपने-अपने कर्मों से बंधे हुए-से हैं और उनके अनुसार हीं आयुष्य, तथा सुख-दुःख पाते हैं। मनुष्य प्राकृतिक प्रकोपों ,भूकम्प, अति-वृष्टि,अना-वृष्टि, दुर्भिक्ष इत्यादि के सामने भी स्वयं को असमर्थ पाता है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि अतीत और अनागत को पूर्ण-रूपेण से जानने में अशक्य तथा काल और कर्म-विपाक के आधीन होने पर भी मनुष्य में अभिमान बहुत है। और तो क्या, कुछ लोग ऐसे भी हैं जो स्वयं को भगवान् मानते हैं अर्थात् आत्मा ही को परमात्मा मानते हैं !! यह तो मिथ्या अभिमान ही है।

हमारे कथन का यह भाव नहीं है कि मनुष्य में केवल कमियाँ और दुर्बलताएं ही हैं। हम मानते हैं कि मनुष्य महान् भी बन सकता है। परन्तु हमारा नम्र निवेदन यह है कि मनुष्य भगवान् नहीं है। आज आत्मा और परमात्मा की पहचान न होने के कारण मनुष्य स्वयं को ही भगवान्

मानकर 'अहम ब्रह्माSस्मि'या 'शिवो Sहम् के मन्तव्य को लिए बैठा है ।

वास्तव में परमात्मा तो एक अत्यन्त महान् शक्ति है । उसकी तो प्रेम-पूर्वक स्मृति-मात्र से भी मनुष्य को अपार आनन्द प्राप्त होता है । उससे ही मनुष्य सद्बुद्धि और सद्गति भी पा सकता है । वह परमपिता ही काल और कर्म-बन्धन से भी छुड़ाने वाला है । अत: मनुष्य को चाहिए कि अपनी और परमप्रिय परमपिता परमात्मा की पहचान प्राप्त करके उसके आधार पर उस परमपिता से नाता जोड़े अर्थात् योग-युक्त हो ताकि उसका जीवन निर्विकारी एवं आनन्दमय हो सके । इसी प्रयोजन से यह पुस्तक लिखी गई है इसमें अनेक मतों की समीक्षा करते हुए आत्मा और परमात्मा का सत्य परिचय, जो स्वयं सत्य स्वरूप, पतित-पावन परमात्मा ही ने प्रजापिता ब्रह्मा के कमल-मुख द्वारा दिया है, वर्णित किया गया है । प्रभु-प्रेमियों के लिए यह प्रभु-प्रसाद है ।

–संजय

विषय-सूची

क्रम संख्या.	विषय	पृष्ठ
१	भगवान् की पहचान (भूमिका) ...	६
२	परमात्मा या भगवान् की विशेषताएं ...	७
३	भगवान् कौन है ? ...	१४
४	परमात्मा का सत्य परिचय ...	२२
५	आत्माएं अनेक और परमात्मा एक है संवाद **(I)** ...	३३
६	आत्माएं अनेक ... संवाद **(II)** ...	४१
७	मैं एक हूँ ...	५२

भूमिका

भगवान् की पहचान

'हे भगवान्', 'हे प्रभु', 'ओ गॉड(O God)'-इन शब्दों के प्रयोग से करोड़ों लोग भगवान् को पुकारते तो हैं परन्तु वे स्पष्ट रूप से जानते नहीं हैं कि भगवान् अथवा परमात्मा है कौन ? जैसे 'माता', पिता आदि शब्द बोलते ही मनुष्य के मन में स्पष्ट रूप से अपनी माता और अपने पिता का रूप, स्वभाव,सम्बन्ध इत्यादि सामने आ जाते हैं वैसे 'परमात्मा', जिसे वे अपना 'माता-पिता' मानते हैं, को याद करते समय उन के मन-पट पर कोई सुस्पष्ट परिचय प्रकट नहीं होता । और, बहुत से लोग तो भगवान् के यथार्थ परिचय से अनभिज्ञ होने के कारण अपने मत-प्रवर्तक, धर्म-ग्रन्थ के लेखक या किसी विशेष प्रतिभा वाले मनुष्य को अथवा किसी देवता को भी 'भगवान्' की संज्ञा दे देते हैं । उदाहरण के तौर पर बौद्ध-धर्म के अनुयायी बुद्ध को 'भगवान् बुद्ध',जैन धर्म के लोग महावीर को 'भगवान् महावीर',ईसाई धर्म को मानने वाले ईसा को 'भगवान् ईसा' (Lord Christ)तथा आदि सनातन धर्म को मानने वाले लोग श्रीकृष्ण,श्रीराम, व्यास तथा शंकर आदि को 'भगवान् कृष्ण','भगवान् राम','भगवान् व्यास', 'भगवान् शंकर' आदि कहते हैं । अब प्रश्न उठता है कि क्या इन सबको भगवान् की उपाधि देना सही है या भगवान् शब्द इन सभी से भिन्न किसी सर्वोच्च आत्मा का वाचक है ? भगवान् के गुण तथा स्वरूप और कर्त्तव्य क्या हैं ? क्या कोई ऐसे विशेष गुण,कर्म,स्वभाव,प्रभाव,रूप और सम्बन्ध आदि हैं जिनसे कि हम भगवान् को पहचान सकें ? अब हम अपने अनुभव के आधार पर, सरल ढंग से इन्हीं प्रश्नों पर विचार करेंगे ।

-सम्पादक

'परमात्मा' या 'भगवान्' की विशेषतायें

हम देखते हैं कि संसार में जितने भी मनुष्य हैं, उन सब में ज्ञान, स्वरूप-स्थिति, पवित्रता, शान्ति, आनन्द, शक्ति और प्रेम, इत्यादि में से किसी-न-किसी की कुछ कमी या **'अपूर्णता'** अवश्य है । इस कमी अथवा अपूर्णता को पूरा करने के लिए ही वे कर्म,पुरुषार्थ अथवा साधना करते हैं । फिर,हम यह भी देखते हैं कि इन मनुष्यों में से भी कोई अधिक ज्ञानवान है कोई कम,कोई अधिक पवित्र,शान्त और शक्तिमान् है तो कोई इस दृष्टिकोण से अभी पीछे हैं । जो अधिक ज्ञानवान, स्वरूप-स्थित, पवित्र और आत्मिक शक्ति से सम्पन्न होता है, उसे हम **'महात्मा'** कहते हैं । मनुष्यों में ज्ञान, शान्ति, शक्ति आदि के दर्जे अथवा कलाएं(Degrees) देखकर स्पष्ट संकेत मिलता है कि कोई ऐसी भी आत्मा होगी जिसमें सभी गुणों या विभूतियों की पूर्णता होगी । **उस सदा सम्पूर्ण आत्मा को परमात्मा अथवा 'भगवान्' कहा जाता है** । मनुष्य तो थोड़े-बहुत अल्पज्ञ और असमर्थ होने के कारण ऐसे कर्म कर ही बैठते हैं कि जिनके फलस्वरूप उन्हें सुख या दु:ख भोगना पड़ता है और फिर देह लेनी पड़ती है परन्तु परमात्मा तो अनादि काल से ज्ञान, शक्ति, शान्ति, आनन्द इत्यादि सभी दिव्य लक्षणों में सम्पूर्ण हैं, उनकी कलाएं अनन्त हैं और कभी घटती बढ़ती नहीं हैं । अत: न उन्हें देह लेनी पड़ती है और न ही उन्हें जन्म लेकर कभी सुख-दु:ख भोगना पड़ता है, यानि न उनके कोई माता-पिता हैं, न कोई सुख-शान्ति व मुक्ति की राह बताने वाले गुरू हैं, बल्कि वह स्वयं, **'सदा मुक्त स्वरूप'** हैं और सदा सम्पूर्ण होने के कारण वे ही मनुष्य को ठीक मार्ग-प्रदर्शना कर सकने वाले गुरू हैं तथा सुख-शान्ति रूप सम्पत्ति दिलाने वाले पिता भी वही हैं । वे स्वयं क्लेश और नस-नाड़ी के बन्धन से रहित हैं, अर्थात् वे कर्मातीत होने के कारण कभी भी कर्म-जन्य शरीर

नहीं लेते और कर्म-फल नहीं भोगते ।

भगवान् के लक्षण, गुण, कर्म, स्वभाव, प्रभाव आदि

अत: संक्षेप में परमात्मा अथवा भगवान् के स्वरूप, गुण, कर्म, स्वभाव, प्रभाव, सम्बन्ध आदि का परिचय देने के उद्देश्य से हम कह सकते हैं कि परमात्मा ज्ञान के सागर, सदा स्वरूपस्थ, परम पवित्र, शान्ति स्वरूप, आनन्द स्वरूप, प्रेम स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, अजन्मा और दु:ख-सुख से सदा न्यारे अर्थात् अभोक्ता और सदा-मुक्त हैं । उनकी स्मृति से आत्मा पर यह प्रभाव पड़ता है कि उसके विकर्म दग्ध हो जाते हैं और परमपिता परमात्मा के स्वभाविक कर्मों का यह प्रभाव पड़ता है कि उनसे सारे संसार में शान्ति और सुख की पुन: स्थापना हो जाती है और मनुष्यों आदि के कर्मों के प्रभाव से हुए दु:ख और अशान्ति का नाश हो जाता है । जिस आत्मा पर यह लक्षण नहीं घटते, जो सत्, चित् और आनन्द स्वरूप नहीं है, उसे हम 'परमात्मा' नहीं कह सकते—यह बात भली-भाँति सिद्ध की जा सकती है । इन्सानों (मनुष्यों) में से कोई महान् आत्मा (महात्मा) होता है और कोई 'दुरात्मा' और कोई तो दिव्य गुणों की प्रबलता तथा पवित्रता की पराकाष्ठा के कारण 'देवात्मा' (देवता) भी होता है परन्तु इन्सान फिर भी इन्सान है, उसे 'भगवान्' कहना गलती है । जैसे मनुष्य-तन में विराजमान आत्मा **'ज्योति-बिन्दु'** मात्र है, महात्माओं के तन में रहने वाली आत्मा भी ज्योति-बिन्दु रूप ही है,सूक्ष्म देवताओं (फरिश्तों) के प्रकाशमय तन में भी आत्मा **ज्योतिबिन्दु** ही है, अन्तर केवल यह है कि वह **'सर्वश्रेष्ठ'** और **'सम्पूर्ण'** हैं और **'कर्मातीत'** हैं; न वह स्थूल देह लेते हैं, न सूक्ष्म काया और, इस लिए उन्हें 'निराकार' (Incorporeal) यानि 'शारीरिक-आकार से सदा रहित' भी कहा जाता है । ये निराकार और सम्पूर्ण परमपिता परमात्मा सभी का कल्याण

चाहते हैं और कल्प के अन्त में, जब सभी मनुष्यात्माएं अपनी अल्पज्ञता और असमर्थता के कारण कर्म-भ्रष्ट (अपवित्र) होकर अपना अकल्याण करके अशान्त होती हैं तथा वे ही इस संसार में आकर उन्हें ईश्वरीय ज्ञान तथा योग का सहारा देकर, पतित से पावन, दु:खी से सुखी और बंधनों से मुक्त करते हैं। उसके बाद फिर युगों तक संसार में धर्म, पवित्रता, सुख और शान्ति का अखण्ड साम्राज्य रहता है। इस लिए भगवान् को 'पतित-पावन, संसार-सागर से पार उतारने वाले, सुख-शान्ति के दाता, विषय-विकार मिटाने वाले',-इन शब्दों द्वारा याद किया जाता है।

भगवान् के इस स्वरूप को ध्यान में रखते हुए तो बुद्ध, महावीर इत्यादि मत-प्रर्वत्तकों को आप भगवान् नहीं कह सकते क्योंकि अपूर्णता और कर्म-विपाक के कारण उन्होंने माता के गर्भ से जन्म लिया था और उन्हें पहले थोड़ी अशान्ति हुई जिस कारण ही उन्होंने घर-बार छोड़ दिया था और वे 'सर्वशक्तिमान्' या 'निराकार' (दैहिक आकार से रहित) भी नहीं थे। महावीर, बुद्ध, व्यास, ईसा, शंकराचार्य आदि ने तो आनन्द की प्राप्ति के लिए साधना, भक्ति, मनन-चिन्तन या संन्यास किया, वे सदा-सर्वदा अखण्ड और एकरस आनन्द में स्थित और अव्यक्त नहीं थे। वे आनन्द की प्राप्ति के आकाँक्षी थे और उसके लिए पुरुषार्थी थे अथवा उन्हें पुरुषार्थानुसार कुछ आनन्द की उपलब्धि हुई भी, परन्तु वे आनन्द के सागर नहीं थे, उन्हें स्वरूप ही से, अनादि काल से आनन्द प्राप्त नहीं था। वे नस-नाड़ी के बन्धन में अथवा कर्म और कर्म-जन्य शरीर के बन्धन में भी थे, अर्थात् वे सदा-सर्वदा मुक्त नहीं थे बल्कि मुक्ति के लिए यत्न या साधना करते थे। अतः उन्हें हम 'मत-स्थापक, मुनि, या साधु' की उपाधि दे सकते हैं परन्तु भगवान् के पूर्वोक्त लक्षणों को मानते हुए हम उन्हें 'भगवान्' की संज्ञा नहीं दे सकते।

क्या श्री कृष्ण, श्री नारायण और श्री राम आदि को 'भगवान्' या 'परमात्मा' कहा जा सकता है ?

इस लेख के शुरु में हम 'भगवान्' की जो पहचान लिख आए हैं, उसे ध्यान में रखकर निष्पक्ष भाव से सोचने पर आप मानेंगे कि श्री कृष्ण, श्री नारायण और श्री राम ने भी स्व-स्व शरीर तो लिए थे और श्रेष्ठ कर्मों के आधार पर उनके माता-पिता, स्त्री, सम्बन्धी, कुल-कलत्र, जीवन-काल आदि भी थे, उन्होंने सुख-सौभाग्य, आयुष्य आदि भी भोगा, वे सारी सृष्टि के माता-पिता भी न थे बल्कि उनके अपने-अपने माता-पिता, पुत्र-पौत्र आदि थे; अत: गुणों और कर्मों की पवित्रता की दृष्टि से महान् होते हुए भी उन्हें भगवान् नहीं कहा जा सकता ? जिसके अपने कर्म, शरीर, माता-पिता और शारीरक भोग हों, उसे 'महात्मा' या 'देवात्मा' ही कहा जा सकता है । अत: भावना, कल्पना या ज्ञान रहित श्रद्धा की अवस्था में कोई सब को भी 'भगवान्' कह दे, वह अलग बात है, परन्तु सत्य ज्ञान के आधार पर तो श्री नारायण, श्री कृष्ण तथा श्री राम को और श्री लक्ष्मी, श्री राधा अथवा श्री सीता को 'भगवान्' या 'भगवती' न कहकर देवता और देवी ही मानना योग्य है क्योंकि उनमें दैवी गुण तो थे परन्तु यहाँ भगवान् के जो स्वरूप व लक्षण बताये गए हैं वे उनमें नहीं घटते थे । भगवान् तो एक सर्वोत्तम आत्मा का नाम है जिसे अन्यान्य भाषा-भाषी 'ईश्वर एक है' (God is one), वह परम आत्मा है (He is supreme soul),'अल्लाह हू अकबर'(परमात्मा सबसे महान् है) इत्यादि वाक्यों या वाक्यांशों से अभिव्यक्त करते हैं । भगवान् की कोई 'भगवती' नहीं होती, वह (असंग) (लाशरीक) (एक) और (वाहद) है, अर्थात् उस-जैसा दूसरा कोई नहीं है । अत: सभी को 'भगवान्' या 'भगवान् का रूप' मानना मनुष्य की महान् भूल है । इन्सान को भगवान्

मानने से अथवा देवताओं को 'भगवान्' समझने से ही मनुष्य ने भगवान् के माहात्म्य को गंवा दिया है और वह भगवान् से मिलने वाले अलौकिक सुख से वंचित रह गया है ।

कोई कह सकता है कि-"श्री कृष्ण और श्री राम 'भगवान्' तो नहीं थे किन्तु 'भगवान् के अवतार'थे ।" परन्तु क्या यह कथन युक्ति-युक्त और सत्य है ?

जो लोग परमात्मा को सर्वव्यापक और कण-कण-वासी मानते हैं, उनके सिद्धान्त में तो 'अवतार'शब्द स्थान ही नहीं पा सकता क्योंकि जो सर्वव्यापी है अर्थात् पहले ही से सब में व्यापक है, वह उतरेगा कहाँ से और आएगा कहाँ जबकि वह पहले से ही वहाँ है ? 'अवतार'शब्द का प्रयोग तो किसी एकदेशी (परमधाम के वासी), सर्वशक्तिमान्, कर्मातीत एवं मुक्त आत्मा के इस मनुष्य-लोक में उतरने और कोई निज कर्म-जन्य शरीर न लेकर किसी अन्य की काया (परकाया) में प्रवेश करने का वाचक है । परन्तु श्री कृष्ण और श्री राम ने तो स्व-स्व काया ली थी और निज-निज कर्मानुसार बाल्य, युवादि अवस्थाएं तथा शारीरिक भोग भी भोगे थे । अत: उन्हें 'भगवान् का अवतार' भी नहीं कहा जा सकता । हाँ, उन्हें पृथ्वी के देवता कहा जा सकता है क्योंकि वे दैवी सम्पदा-सम्पन्न थे और मनुष्य-लोक में अन्य सभी मनुष्यों से श्रेष्ठ थे और विष्णु देवता के साकार रूप थे । विष्णु तो ब्रह्मा और शंकर की तरह एक देवता हैं ।

क्या भगवान् एक अनुमान है या अनुभव ?

ऐसी शंका करने वाले लोग भी संसार में बहुत हैं जो कहते हैं कि

इस विषय पर अलग ही एक पुस्तक छपी हुई है, उसे पढिए ।

भगवान् के जो गुण, कर्म, स्वरूप, प्रभाव आदि बताये गये हैं, वे सब कल्पना मात्र हैं। वे कहते हैं कि—'हम परमात्मा को कैसे मानें? यदि वह सचमुच कोई चीज़ है तो दिखाइए, वह कहाँ है? क्या आज तक किसी ने ऐसे परमात्मा को देखा है? यदि वह है तो आज संसार में दुःख, अशान्ति और लड़ाई-झगड़ा क्यों है? परमात्मा ने ऐसे दुःख और दंगे वाला संसार रचा ही क्यों? क्या वह हमें लड़ाकर तमाशा देखता है? हम तो ऐसा परमात्मा मानने के लिए तैयार नहीं हैं?'

परमात्मा के जो गुण, कर्म, स्वरूप इत्यादि यहाँ वर्णित किये गये हैं, वे केवल अनुमान ही से सिद्ध नहीं होते बल्कि अनुभव किये जा सकते हैं। परमात्मा को कई बार कइयों ने यहाँ दिव्य-नेत्रों द्वारा देखा है और दिव्य-बुद्धि या दिव्य-चक्षु द्वारा आप भी उसे देख सकते हैं। कठिनाई केवल यह है कि परमात्मा शरीर में व्यक्त नहीं है जैसे कि आत्मा है; इसलिए उसे जानने, अनुभव करने और देखने के लिए हमें भी शरीर से न्यारा, आत्म-स्वरूप में स्थित होने की आवश्यकता है। 'आत्मा' है, यह तो हमें उन वृत्तान्तों से भी पता चलता है कि कई बच्चे अपने पूर्व-जन्म के हालात बताते हैं। शरीर में चैतन्य की अभिव्यक्ति, मृत्यु के बाद शरीर का निर्जीव हो जाना, कर्म-सिद्धान्त आदि-आदि के आधार पर भी आत्मा का अस्तित्व तो सिद्ध होता ही है। जब हम कर्मों की शुद्धि, आहार-विचार की शुद्धि और आत्म-निष्ठता का अभ्यास करते हैं तो हमें न केवल परमात्मा के गुणों का अनुभव होता है बल्कि परमात्मा का दिव्य प्रत्यक्ष भी होता है। पुनश्च, स्वयं परमात्मा जब संसार के अत्यन्त दुःखमय काल (कलियुग की अन्तिम वेला) में परमधाम से उतर कर, इस मनुष्य-लोक में आते हैं तथा एक मनुष्य-शरीर में प्रविष्ट होकर अपना परिचय तथा उपदेश-आदेश देते हैं तो उसको सुनने से तथा उनकी मार्ग-प्रदर्शना,

सहायता और दिव्य-व्यवहार से भी अनुभव तथा प्रत्यक्ष होता है कि परमात्मा है और उपर्युक्त परिचय वाला है । वह अनुभव हमें अब प्राप्त हो रहा है क्योंकि अब परमपिता परमात्मा अवतरित होकर संसार से दु:ख और अशान्ति मिटाने का कार्य कर रहे हैं । कोई भी निष्पक्ष स्वभाव वाला, निर्विकार और पवित्र जीवन की उत्कट अभिलाषा वाला और तीव्र पुरुषार्थ वाला व्यक्ति अब अनुभव कर सकता है । "परमात्मा ने कौन-सी सृष्टि रची थी- यह जो आजकल हम देखते हैं, या इस से कोई भिन्न अर्थात् सम्पूर्ण सुख-शान्ति वाली ?" फिर, सृष्टि का ऐसा हाल क्यों हुआ, परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं तो इस बिगड़ी सृष्टि को उन्होंने सुधारा क्यों नहीं, क्या परमात्मा सर्वव्यापी नहीं हैं, वह क्या एकदेशी है ? क्या परमात्मा कोई एक विशेष-आत्मा है या परमात्मा (भगवान्) शब्द एक अवस्था या महानता का स्तर है जिसे कोई भी पुरुषार्थी प्राप्त कर सकता है ?"-इन प्रश्नों का युक्ति-युक्त और अनुभवजन्य समाधान मिल सकता है अत: इसके लिये प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय के सेवा-केन्द्र तदर्थ ही हैं । वहाँ पधार कर हरेक मनुष्य स्पष्ट रीति समझ सकता हैं कि "परमात्मा एक है, उसका दिव्य नाम 'शिव' और रूप ज्योति-बिन्दु है और उसका धाम ब्रह्मलोक है ।"

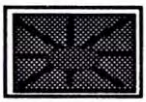

भगवान् कौन है ?

भगवान् एक है; वह देवों का भी देव है
वह मत-स्थापकों के भी परमपिता हैं

शास्त्रवादी लोग कहते हैं कि **भगवान्** शब्द का अर्थ **'ऐश्वर्यवान्'** है, परन्तु शास्त्रों में लिखा है कि केवल ऐश्वर्य ही नहीं बल्कि पाँच और वस्तुएं भी हों तभी 'भग' का अर्थ पूरा होता है । अथवा यों भी कह सकते हैं कि ऐश्वर्य छः प्रकार का होता है । जिसके पास छः प्रकार का ऐश्वर्य अथवा ईश्वरीय सम्पत्ति विशेष रूप से हो, उसे ही 'भगवान्' कहा जा सकता है ।* जिन छः वस्तुओं को शास्त्रकारों ने 'भग' नाम दिया है, वे **यह हैं (१) वैराग्य (२) ज्ञान (३) ऐश्वर्य (४) धर्म (५) श्री और (६) यश ।**

सदा अनासक्त कौन ?

'भगवान्' शब्द का भावार्थ करते हुए शास्त्रवादी लोगों ने ये जो छः प्रकार की धारणाएं अथवा प्राप्ति गिनाई हैं, वैसा मानना ठीक है या नहीं—इस प्रश्न को इस समय छोड़कर हम पहले यह विचार करके देखेंगे कि क्या इस षड् ऐश्वर्य के विचार से हम बुद्ध, महावीर, ईसा, व्यास, श्री नारायण, श्री कृष्ण या श्री राम इत्यादि को 'भगवान्' कह सकते हैं ? सबसे पहले 'वैराग्य' नाम के 'भग' को लीजिए । महात्मा, धर्म-प्रर्वत्तक महावीर, बुद्ध तथा शंकराचार्य ने तो विरक्त होकर घर-बार का संन्यास कर दिया था, जिसका अर्थ यह हुआ कि सन्यास से पहले के जीवनकाल

---

* वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्य धर्मश्चेत्यात्म बुद्धयः । बुद्धयः
श्रीर्यशश्चेति षड्वैभग्वतो भगा : ॥

में वे पूर्ण विरक्त नहीं थे। परन्तु 'भगवान्' शब्द तो वास्तव में उस सम्पूर्ण आत्मा का वाचक है जो सदा विरक्त, सदा असंग, सदा अनासक्त अथवा सदा ही उपराम-चित्त हो। भगवान् के स्त्री, बच्चे, माता-पिता, घर-घाट, धन-धान्य आदि एक लौकिक मनुष्य की तरह कभी होते ही नहीं हैं, वे किसी काल में भी आसक्त होकर इन्हें अपनाते ही नहीं हैं तो फिर उसके विषय में उन माता-पिता, पुत्र आदि से ममता-रहित अथवा विरक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। वह तो प्रेम का सागर होते हुए भी सदा निर्मोही हैं और कर्मातीत हैं। वह राग के वश कभी होते ही नहीं कि बाद में उन्हें वैराग्य हो और वह संन्यास करें।

अब श्री कृष्ण और श्री राम आदि मान्यवर देवताओं के जीवन का स्मरण कीजिए। श्री कृष्ण और श्री राम आदि ने घर-गृहस्थ का संन्यास नहीं किया था परन्तु वे राज-कार्य तथा गृहस्थ-व्यवहार सँभालते हुए भी पदार्थों और सम्बन्धों के प्रति अनासक्त भाव रखते थे; इस अर्थ में उनमें भी वैराग्य का होना माना जा सकता है परन्तु फिर भी उनके मन में पूर्व काल में अति सूक्ष्म एवं सतोगुणी रूप से दिव्य सुख भोगने की इच्छा रही होगी और उसके लिए उन्होंने सतोप्रधान कर्म भी किए होंगे तभी तो उन्हें उस राज्य-भाग्य की अथवा अतुल सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति हुई होगी? कर्म के बिना तो प्रारब्ध होती ही नहीं और भोग्य तथा भाग्य प्राप्त ही नहीं होते हैं। जबकि 'अन्न के दाने-दाने पर मोहर है' तो उन्होंने जो पदार्थ भोगे होंगे उन पर भी तो उनकी प्रारब्ध की मुहर लगी हुई होगी? परन्तु 'भगवान्' शब्द तो एक ऐसी विशेष सर्वोच्च आत्मा का वाचक है जो इस प्रकार के सुख-भोग और प्रारब्ध के प्रति भी अनासक्त है। भगवान्, इस प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ नहीं करते। भगवान् और इन्सान में यही तो भेद है और भगवान् का यही तो विशेष ऐश्वर्य है। यदि

भगवान् भी बैकुण्ठ अथवा स्वर्ग के सुखों को या मनुष्य-लोक के पदार्थों को तथा शरीर और आयुष्य आदि को भोगते हों तो उन्हें 'भगवान्' न कहकर 'भाग्यवान्' अथवा 'भोग्यवान' कहना चाहिए। श्री नारायण, श्रीकृष्ण और श्रीराम तो भूमि के देवता हैं और श्री लक्ष्मी, श्री सीता आदि मान्य देवियाँ हैं क्योंकि पूर्व-जन्म में श्रेष्ठ कर्म करने के कारण उन्हें दिव्य-भोग्य प्राप्त थे।

सम्पूर्ण एवं स्थायी ज्ञान किस में है ?

अब ज्ञान नाम के दूसरे 'भग' पर विचार कीजिए ! इब्राहिम, व्यास, बुद्ध, ईसा, शंकराचार्य आदि को तो पहले शब्द-ज्ञान भी नहीं था, उन्हें शब्द-ज्ञान भी उनके माता-पिता या शिक्षक ने सिखाया था। उन्होंने कुछ परम्परा से सीखा, कुछ दूसरों के अनुभवों को ग्रहण किया, कुछ स्वयं मनन-चिन्तन किया और ज्ञान के लिए कुछ पुरुषार्थ किया, परन्तु 'भगवान्' तो केवल वही कहा जा सकता है जो सदा जानता ही है, जो ज्ञान स्वरूप हैं, जिसमें ज्ञान है ही, जो किसी से ज्ञान प्राप्त या अर्जित नहीं करता बल्कि तीनों कालों में एक-रस ज्ञान से परिपूर्ण हैं। उसे सोचने, समझने, सुनने, देखने या अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि वह तो ज्ञान से सदा ही प्रकाशमान है। वह सदा स्वरूप-निष्ठ है और सृष्टि के भी आदि-मध्य और अन्त को बिना सन्देह, संशय, अनिश्चिता या अपूर्णता के स्वत: ही जानता है। इसलिए मनुष्य जब किसी बात को नहीं जानता तो कहता है- 'God knows; I do not know', अर्थात् मैं नहीं जानता, इसे तो भगवान् ही जानते होंगे। एक परमात्मा ही को 'Knowledgeful' अर्थात् ज्ञान का सागर कहा जाता है, अन्य किसी को यह उपाधि दी ही नहीं जा सकती; अन्य तो केवल ज्ञान के गागर या लोटा ही हो सकते हैं। भगवान् के तो कोई शिक्षक या गुरु नहीं होते, न

ही भगवान् को शास्त्र, परम्परा, पर-अनुभव या 'भूल और पुरुषार्थ' (Trial and error) के तरीके से कभी कुछ सीखने की अवश्यकता होती है। वह तो है ही ज्ञान का अनादि अविनाशी स्त्रोत।

फिर, आप देखिये कि इब्राहिम, बुद्ध, ईसा, शंकराचार्य आदि-आदि के ज्ञान में तो वैपरीत्य है, तभी तो सभी के अलग-अलग ग्रन्थ या सम्प्रदाय या मत हैं। तो सभी को 'भगवान्' किस मापदण्ड या प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है? यदि सभी में एक-जैसा और एक-जितना ज्ञान होता जो कि भगवान् में होना आवश्यक है तो सभी के गुण, कर्म, स्वभाव, प्रभाव, आकृति, प्रकृति आदि-आदि में अथवा मन,वचन और कर्म में अन्तर क्यों होता? स्पष्ट है कि भगवान् का ज्ञान भगवान् ही के पास है और अन्य सभी अपने पुरुषार्थ के अनुसार उसे यथा-योग्य जानते या मानते हैं या नहीं भी जानते और नहीं भी मानते।

यहाँ कुछ लोग कहेंगे कि श्रीकृष्ण और श्रीराम में तो पूर्ण ज्ञान था? परन्तु आप जानते होंगे कि यही लोग ऐसा भी कहते हैं कि श्री कृष्ण ने संदीपन से तथा श्री राम ने विश्वामित्र से शिक्षा प्राप्त की थी। 'योगवाशिष्ठ' तथा 'शिव गीता' नामक पुस्तक के आधार पर आज लोग यह भी मानते हैं कि श्री राम को वशिष्ठ ने तथा भगवान् शिव ने आध्यात्मिक ज्ञान दिया था तथा महाभारत के आधार पर वे कहते हैं कि श्री कृष्ण ने भी शिव की उपासना* की थी। उनकी इस मान्यता से तब यह तो सिद्ध होता नहीं कि श्री कृष्ण तथा श्री राम 'ज्ञान के सागर' थे। पुनश्च, योगवाशिष्ठ, महाभारत आदि को छोड़ भी दिया जाय तो भी यह उक्ति है कि 'ज्ञान द्वारा नर श्री नारायण पद प्राप्त करता है तथा नारी श्री

* महाभारत, ऐषिक पर्व

लक्ष्मी पद पाती है' और आत्मा को सद्गति तथा देव-पद की प्राप्ति होती है। अत: तब भी सिद्ध है कि श्री कृष्ण (श्री नारायण) तथा श्री राम पहले कभी साधारण नर रहे होंगे और उस जन्म में ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के फलस्वरुप उन्होंने ऐसा देव पद या नारायण पद या राम पद पाया होगा। अर्थात्, श्री नारायण तथा श्री राम को 'देवता' ही कहना चाहिए।

ऐश्वर्य, श्री और यश

ऐश्वर्य से अभिप्राय, प्रतिभा, चमत्कारी कर्त्तव्य, उच्च सामर्थ्य तथा सम्पत्ति है। 'श्री' भी सम्पत्ति और सौन्दर्य को कहते हैं और जो कोई विशेष प्रतिभा वाला होता है, सामर्थ्य वाला होता है तथा उच्च कर्त्तव्य करता है, उसका यश तो संसार में होता ही है। 'भगवान्' का ऐश्वर्य तो यह है कि वह मनुष्य को काम-क्रोधादि विकारों पर विजय प्राप्त करने के योग्य बनाते हैं और मनुष्यात्मा को दिव्य-बुद्धि तथा दिव्य-दृष्टि के वरदान देते, ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग की शिक्षा देते तथा मुक्ति और जीवन्मुक्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार देते हैं और उनकी स्मृति से मनुष्य के पाप दग्ध होते और कर्म-बन्धन कटते हैं। भगवान् तो तीनों लोकों की रचना के अद्वितीय नाथ हैं सभी दैवी सम्पत्ति उन्हीं की तो दी हुई है, वह ही तो अत्यन्त आकर्षणमय एवं मोहिनी मूर्त्त हैं और, इस कारण, सारे संसार में उनका यश भी है। श्री कृष्ण, श्री राम, महात्मा बुद्ध, महावीर , व्यास, ईसा आदि को सभी धर्म-विश्वासी 'भगवान्' नहीं मानते। वास्तव में भगवान् तो ज्योतिस्वरुप एवं अशरीरी (शरीर-रहित) हैं जिसे सभी लोग 'पिता' (O God Father त्वमेव माताश्चपिता) कहकर पुकारते हैं। उन्हीं से सब प्रार्थना करते हैं कि- 'हे प्रभो, हमारे विषय-विकार मिटाओ, हमारे पाप हरो।' अन्य सभी स्वयं ही शरीर के बन्धन में हैं तो वे दूसरों को कैसे मुक्ति दे सकते हैं? वे स्वयं ही कर्म

फल भोग रहे हैं तथा उपासना, योग, साधना (Communion) आदि करने वाले हैं तो उनकी स्मृति से हमारे विकर्म कैसे दग्ध हो सकते हैं तथा कर्म-बन्धन कैसे कट सकते हैं ?

यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि श्री कृष्ण ने तो गीता ज्ञान और सहज राजयोग की शिक्षा दी थी और यह वचन दिया था कि-'मैं तुम्हें परमधाम ले चलूँगा तथा स्वर्ग का स्वराज्य दूँगा और कि यह ज्ञान आत्मा को सर्वाधिक पवित्र करने वाला है', तब क्या श्री कृष्ण को 'भगवान्' नहीं कह सकते ? इस सन्दर्भ में यह जानना जरूरी है कि गीता में जो महावाक्य हैं कि 'मैं सृष्टि का बीजरुप हूँ, मेरा जन्म दिव्य है, मैं तुम्हें परमधाम ले चलूँगा, तुम्हें स्वर्ग का स्वराज्य दूँगा, सूर्य और तारागण के भी पार मेरा धाम है' आदि-आदि उनसे तो यह सिद्ध होता है कि गीता-ज्ञान श्री कृष्ण देवता ने नहीं दिया था बल्कि 'भगवान्' ने, अर्थात् श्री कृष्ण के भी आत्मिक पिता, देवों के देव अव्यक्त-मूर्त 'ज्योति-स्वरूप' परमात्मा ने दिया था ॥ यहाँ हम इस विषय को सविस्तार स्पष्ट नहीं कर सकते ।* परन्तु हम यहाँ इतना कहना चाहते हैं कि श्री कृष्ण तो विष्णु का साकार रूप थे और विष्णु तो त्रिदेव में से स्वयं भी एक देवता हैं । श्री कृष्ण को श्री नारायण अथवा विष्णु का साकार रूप तो सभी मानते ही हैं, अत: उन्हें 'भगवान्' नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'भगवान्' तो त्रिदेव के भी रचयिता हैं । यह शब्द 'देवता' शब्द का पर्याय नहीं है, देवता अनेक हैं परन्तु

---

* इस विषय पर आप अलग छपी हुई पुस्तक प्राप्त कर सकते हैं ।
ग्रंथों में लिखा है कि वासुदेव के पुत्र श्री नारायण (श्री कृष्ण) जोकि विष्णु का साकार रूप है, वह हमें प्रेरित करें । यह स्पष्ट है कि श्री कृष्ण को विष्णु का रूप माना गया है ।

भगवान् एक हैं, देवों के भी परमपिता हैं ।

धर्म का स्रोत कौन है ?

अब धर्म पर विचार कीजिए । 'धर्म' का अर्थ 'धारणा' है । इब्राहिम, बुद्ध, व्यास, ईसा आदि तो धारणा के पुरुषार्थी थे वे धर्मनिष्ठ होने का अभ्यास कर रहे थे । पुनश्च, उनसे भी उच्च धारणा तो श्री नारायण, श्री राम आदि देवताओं की ही कहेंगे जिन्होंने कि गृहस्थ-व्यवहार को निभाते हुए जीवन में पवित्रता एवं दिव्य गुणों की धारणा को बनाए रखा । परन्तु उन्होंने भी दैवी-धर्म का पालन ही किया, वे भी धर्म के आदि व्याख्याता, आदि-स्थापक अथवा आदि-प्रर्वत्तक न थे; धर्म के ज्ञान एवं आचरण का स्रोत तो एक-मात्र वह हैं जिन्होंने कि सतयुग से भी पहले, संगम युग में आदि सनातन देवी-देवता धर्म की स्थापना की थी; वह आदि स्थापक सदा ही धर्म-निष्ठ और आत्म-बुद्धि है और धर्म की हानि होने पर वह इस संसार में अवतरित होकर धर्म की पुनः स्थापना करता है । उसे ही 'भगवान्' मानना चाहिए । वह एक भगवान् ही मनुष्य को प्रजापिता ब्रह्मा तथा सरस्वती (एडम और ईव) के द्वारा ही धर्म एवं नियम मनुष्य को समझाता है ।

अब प्रश्न उठता है कि वह एक भगवान्, तो ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर का भी रचयिता है और सर्वोच्च दैवी धर्म का आदि स्थापक है, सदा धर्म-निष्ठ है, ज्ञान का सागर है, सभी का परमपिता अथवा माता-पिता है, सदा अनासक्त और सदा सुन्दर है, कभी वह आत्मा कुरूप अर्थात् पतित होता ही नहीं, वह कौन है ?

इसके उत्तर में यही कहना होगा कि वह हैं—ज्योति-स्वरूप, बिन्दु-रूप, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप, पतित-पावन, परमपिता परमात्मा 'शिव' जो कि सदा निराकर अर्थात् अकाय या अशरीरी हैं और उन्हें

त्रिदेव का रचयिता होने के कारण 'त्रिमूर्ति' भी कहा जाता है। उनके स्मरण-चिन्ह मुसलमानों, बौद्धों, ईसाईयों,यहूदियों आदि सभी के यहाँ मिलते हैं। वह सर्वशक्तिमान् पिता ही प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा आदि सनातन देवी-देवता धर्म की पुन: स्थापना कराते और शंकर द्वारा अधर्म का महाविनाश कराते तथा विष्णु द्वारा दैवी सत् धर्म वाली सतयुगी तथा त्रेतायुगी सृष्टि का पालन कराते हैं। वह सभी का कल्याण करने वाले हैं, इस लिए उनका दिव्य-नाम निराकर 'शिव' है। वह श्री राम और श्री कृष्ण के भी परम पूज्य हैं। यह सत्यता तो रामेश्वरम् तथा गोपेश्वरम् के मन्दिरों से स्पष्ट है। उस एक 'भगवान्' को यथार्थ रीति से जानना, मानना और उसकी स्मृति द्वारा विकर्मों को दग्ध करना तथा उससे मुक्ति और जीवन्मुक्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त करना हर-एक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

परमात्मा का सत्य परिचय

परमात्मा को मानने वाले बहुत-से लोग प्राय: कहा करते हैं—"हम जब कभी परमात्मा की स्मृति में बैठते हैं तो हमारा मन परमात्मा की याद में टिकता नहीं है । वह स्मृति के रस में डूबता नहीं है ।" अन्य लोग कहते हैं—"भाई, यह मन तो बड़ा चंचल है । इसे तो प्राणायाम द्वारा ही रोकना पड़ेगा क्योंकि यह परमात्मा की याद में तो स्थित होता नहीं है ।" परन्तु इस विषय में हमारा अनुभव यह है कि यदि हमें परमपिता परमात्मा का वास्तविक परिचय प्राप्त हो जाये,(२) उनके साथ हम मनुष्य आत्माओं का कितना घनिष्ठ संबंध है, इसका बोध हो जाए, (३) उनसे हमें क्या उच्च प्राप्ति हो सकती है, इसका भी पता चल जाय और फिर (४) यदि हम आहार-व्यवहार आदि की शुद्धि तथा ब्रह्मचर्य आदि नियमों पर भी ठीक रीति से ध्यान दें तो हमारा मन उच्च सुख तथा आनन्द का अनुभव कर सकता है और अपने जीवन को धन्य कर सकता है । परन्तु आज लोग या तो आत्मा को परमात्मा मानते हैं या परमात्मा को नाम और रूप से न्यारा मानते हैं; तो ऐसी स्थिति में मन को टिकाना असम्भव है ही क्योंकि जिस का नाम, रूप या धाम ही न हो उसकी तो स्पष्ट कल्पना या स्मृति हो ही नहीं सकती । अत: सर्वप्रथम परमप्रिय परमपिता परमात्मा का परिचय जानने की ज़रूरत है ।

'परिचय' का भावार्थ

हम इस संसार में देखते हैं कि जब-कभी भी किसी का परिचय दिया जाता है तो उसमें प्राय:- (१) उसके नाम, (२) निवास स्थान,(३) कर्त्तव्य (व्यवसाय), (४) सम्बन्ध, (५)गुण आदि का वर्णन अवश्य होता है और (६) उस व्यक्ति का रूप तो हमारे नेत्रों के सामने होता ही है अथवा उसका फोटो (छाया चित्र) हमें दिखा दिया जाता है । इस प्रकार दिये गए पूर्ण परिचय से हमारे मन में उस मनुष्य की पहचान ठीक रीति से अंकित हो जाती है और कभी भी उस मनुष्य को याद करना हमारे लिए सहज हो

जाता है। यदि परमात्मा का भी हमें स्पष्ट परिचय हो जाए तो उसकी स्मृति में स्थित अथवा लवलीन होना भी कठिन न होगा।

सभी जानते हैं कि प्रचलित रिवाज के अनुसार जब किसी कन्या की सगाई होनी होती है तो उसे भी मंगेतर अथवा भावी पति के नाम, रूप, गुण, कर्त्तव्य (व्यवसाय) स्थान, आयु इत्यादि का परिचय दिया जाता है और इसे इस बात का आश्वासन भी दिया जाता है कि उस व्यक्ति के सम्बन्ध से उसका (कन्या का) जीवन भी सुखी होगा। वे या तो दोनों एक बार एक-दूसरे को देख लेते हैं या उन्हें फोटो दिया जाता है और या दोनों की आकृति का थोड़ा बहुत वर्णन करके उन्हें परिचय दे दिया जाता है। इस प्रकार का परिचय मिलने और सम्बन्ध निश्चित होने के बाद उनकी लगन लग जाती है, मन जुट जाता है। परस्पर याद का तांता शुरू हो जाता है, यहाँ तक कि यदि उस कन्या से बात चीत करने के दौरान में कभी किसी अन्य व्यक्ति की चर्चा हो जिसका नाम भी उसके भावी पति के नाम-जैसा हो अथवा जिसके गुण या कर्त्तव्य भी उसके मंगेतर के गुण तथा व्यवसाय जैसे हों तो उसे सुनकर भी उस कन्या का मन उस बात से हट कर कुछ समय के लिए तो अपने मंगेतर अथवा भावी पति की ओर ही चला जाता है। इस उदाहरण से नाम, रूप, और गुणों आदि को जानने का महत्व स्पष्ट है। यदि किसी का परिचय देते समय इन पर प्रकाश न डाला जाए तो मनुष्य का मन उस व्यक्ति पर टिक नहीं सकता।

ठीक इसी प्रकार, यदि आत्मा को भी परमात्मा अथवा भगवान् का परिचय ऊपर बताई गई रीति से दिया जाए तो परमात्मा, जो कि सर्वाति सुन्दर, सभी गुणों का भण्डार और सभी से अधिक नामवर है, उनकी याद में आत्मा तन्मय हो जाती है। वह सच्चा आत्मिक सुख अनुभव करती है।

एक छोटे बच्चे को भी जब पता लगता है कि अमुक व्यक्ति उसका पिता है और उस बच्चे को अपने उस पिता द्वारा प्राप्ति का भी जब थोड़ा-कुछ पता चलता है तो उसका मन सहज ही अपने पिता की ओर खिंच जाता है, यहाँ तक कि उसके माता-पिता से छुड़ाकर यदि अन्य कोई उसे अपनी ओर खींचता है तो वह बच्चा इस बात के लिए सहमत नहीं होता। अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों की याद में भी मनुष्य तभी खिंचाव का अनुभव करता है जब उसे उनके स्वभाव और मित्र-भाव का परिचय होता है, अथवा उन द्वारा वह अपनी किसी आवश्यकता अथवा कमी को पूरी होते या उनसे स्नेह अथवा सम्पत्ति की प्राप्ति होते देखता है। ये बातें हम सभी के अनुभव में किसी-न-किसी प्रकार आ चुकी हैं।

ठीक इसी प्रकार, परमपिता परमात्मा की याद के रस-पान का आनन्द भी मनुष्य तभी ले सकता है जब उसे परमपिता परमात्मा का परिचय हो। जब मनुष्य की बुद्धि में यह बात बैठ जाती है कि परमात्मा ही एक-मात्र उसके मंगलकारी मित्र और माता-पिता हैं तथा सभी प्रकार के स्थायी तथा अलौकिक सुखों के दाता हैं और उनकी मार्ग-प्रदर्शना से ही वह इस संसार रूपी दलदल से निकल सकता है तो उसका मन भी परमात्मा की ओर बराबर खिंच जाता है। फिर वह उनकी याद में मग्न रहकर सच्चा सुख पाने का सच्चा अभ्यासी हो जाता है। वह आत्मिक सुख तो अनुभवी ही जानता है।

परन्तु कठिनाई यह है कि आजकल संसार में ऐसे सलोने, ऐसे गुण-सागर और ऐसे कल्याणकारी पिता के बारे में यह प्रचार किया जाता है कि परमात्मा का तो कोई नाम या रूप ही नहीं है, उसका तो विशेष धाम नहीं है और वह निर्गुण है, आदि-आदि। ये तथा अन्यान्य ऐसी बातें सुनने वाली मनुष्यात्माओं के मन में परमात्मा के बारे में कोई

आकर्षण नहीं होता और परम-आत्मा का नाम, रूप आदि का परिचय न होने के कारण ही अपनी बुद्धि को टिकाने के लिए उन्हें कोई ठिकाना भी नहीं मिलता। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि मनुष्य प्रभु-मिलन से वंचित रह जाता है।

अत: अब हम परमपिता परमात्मा का वास्तविक परिचय देते हैं जो कि स्वयं उन्हीं ने मनुष्य-मात्र के कल्याणार्थ हमें दिया है। परमात्मा का परिचय तो परमात्मा स्वयं ही दे सकते हैं—इस बात को अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह एक मानी हुई बात है। इस परिचय में परमात्मा अपने दिव्य नाम, दिव्य रूप, दिव्य गुण, दिव्य कर्त्तव्य इत्यादि का भी ज्ञान देते हैं क्योंकि इन के बिना तो परिचय को 'परिचय'कहना भी गोया अनर्थ करना है।

परमात्मा का दिव्य नाम

संसार के बहुत-से लोगों का विचार है कि परमात्मा का कोई नाम ही नहीं है। जो सबसे अधिक नामवर हो उसे गुमनाम समझना—यह कैसी विडम्बना है ! लौकिक उक्ति में भी जब कोई कहता है कि अमुक व्यक्ति का तो नाम ही नहीं है, उसका अभिप्राय यह होता है कि वह व्यक्ति अब नष्ट हो चुका है अथवा वह मिलता ही नहीं अथवा उसका तो वहाँ कोई नाम ही नहीं लेता। अत: परमात्मा के विषय में यह कहना कि परमात्मा का नाम ही नहीं है, इसका तो यह अर्थ निकलता है कि परमात्मा है ही नहीं। यह कहना बड़ी भूल है क्योंकि परमात्मा का नाम तो मन को हर्षाने वाला और गुमराह व्यक्तियों को भी राह दिखाने वाला है। परमात्मा का वह दिव्य नाम 'शिव' है। 'शिव' का अर्थ—'कल्याणकारी' है। इस नाम को जानने से तथा याद रखने से मनुष्य को प्रेरणा मिलती है कि जैसे परमात्मा किसी का अकल्याण नहीं करते

और किसी का अशुभ भी नहीं सोचते वैसे ही हमें भी सदा शुभ-चिन्तक होकर अपने तथा दूसरों के हित अथवा कल्याणार्थ ही कर्त्तव्य करना चाहिए। हमें विकारों को छोड़ देना चाहिए क्योंकि मनो-विकार हमारा तथा दूसरों का अकल्याण करने वाले हैं।

परमात्मा का यह 'शिव' नाम गुणवाचक और कर्त्तव्यवाचक है, यह संज्ञा-वाचक नहीं है। चूंकि परमात्मा मनुष्य आत्माओं को ज्ञान और योग की शिक्षा देकर विकारी से निर्विकारी, पतित से पावन और दु:खी से सुखी बनाकर कल्याण करने वाले पिता, शिक्षक,सदगुरु हैं, इसलिए ही उनका यह नाम है। यह नाम बहुत ही सरल और सरस है और अधिक विचार करने पर मालूम होगा कि इस नाम में परमात्मा का पूरा परिचय समाया हुआ है। इसलिए यह नाम सर्वोत्तम है।

परमात्मा का दिव्य-रूप

लोग जैसे प्राय: यह कहते हैं कि परमात्मा का नाम नहीं है, वैसे ही यह भी कह दिया करते हैं कि परमात्मा का तो कोई रूप नहीं है बल्कि वह तो सर्व-व्यापक है। वास्तव में परमात्मा सर्व-व्यापक नहीं है।* बल्कि परमात्मा का अपना दिव्य-रूप है। रूप के बिना तो संसार में कोई भी सत्य वस्तु नहीं होती। हाँ, जिस वस्तु का निशान ही मिट जाए अर्थात् जो रहे ही न या हो ही न, उसकी बात अलग है।

परमात्मा को 'ज्योति-स्वरूप'तो प्राय: सभी मानते हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि उस ज्योति का भी क्या रूप है? हम अनुभव के आधार पर जानते हैं कि परमात्मा का वह रूप ऐसा है जैसे दीप-शिखा का होता

---

* इस विषय पर उठने वाले सभी प्रश्नों का समाधान 'परमात्मा कहां है' ? – इस पुस्तक में पढ़िये

है। परमात्मा ज्योति-बिन्दु रूप, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। उनका यह रूप दिव्य-चक्षु द्वारा ही देखा जा सकता है। उनके इस रूप की बड़ी प्रतिमाएं 'शिवलिंग' नाम से भारत में यत्र-तत्र पूजी जाती हैं। भारत में आदि सनातन धर्म वालों के अनुयायियों के यहाँ भी इस आकृति वाली प्रतिमा को मान्यता या पूज्यता का स्थान प्राप्त है। उदाहरण के तौर पर मुसलमानों के मक्का शरीफ में, जापान में बौद्धियों के यहां तथा अमेरिका तथा रोम आदि में कई ईसाइयों के यहां इस आकृति वाले पत्थर की किसी-न-किसी रीति से प्रतिष्ठा है।

भारत में हम देखते हैं कि रामेश्वरम् में राम को, वृन्दावन में गोपेश्वरम् के मन्दिर में श्री कृष्ण को भी इनकी पूजा करते हुए दिखाया गया है। भाव यह है कि परमात्मा शिव सभी के पूज्य हैं। ज्योति-बिन्दु शिव ही देवों के भी देव हैं और त्रिलोकीनाथ हैं। वह ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के भी रचयिता हैं। इसलिए उन्हें त्रिदेव के रचयिता या 'त्रिमूर्त्ति' कहा जाता है। ऐलीफेन्टा में 'त्रिमूर्त्ति' प्रसिद्ध है। उन्हें त्रिभुवनेश्वर और त्रयाबकेश्वर भी कहा गया है। परन्तु इस रहस्य को न जानने वाले लोग, शिव और शंकर को एक मानने की भूल कर लिया करते हैं, जबकि वास्तव में वे दोनों भिन्न हैं।

शिवलिंग से परमात्मा की विचित्रता स्पष्ट है। अन्य सभी देवताओं की प्रतिमाओं का तो उनका अपना शारीरिक रूप ही दिखाया होता है परन्तु शिवलिंग के कोई हाथ, कान आदि अवयव नहीं होते क्योंकि यह अशरीरी (शरीर-रहित) अकाय, ज्योति-स्वरूप परमपिता परमात्मा की

प्रतिमा है ।

परमात्मा का धाम

ऊपर, परमपिता परमात्मा का हमने जिस रूप का वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि परमात्मा सर्व-व्यापी नहीं हैं बल्कि विशेष रूप वाला होने के कारण उनका अपना विशेष धाम भी है। उस धाम को 'परमधाम''ब्रह्मलोक', या शिवपुरी या निर्वाणधाम इत्यादि नामों से याद किया जाता है । श्रीमद्भगवद् गीता में भी कहा गया है कि वह धाम सूर्य, चाँद, तारागण एवं आकाश तत्व से भी पार 'छठे-तत्त्व' में है जिसे 'अखण्ड ज्योति महतत्व' या ब्रह्म-तत्त्व भी कहा जाता है। ईसाई धर्मावलम्बी उस धाम को हाइएस्ट हैवन (Highest Heaven) और मुसलमान लोग उसे 'रूहों की दुनिया' कहते हैं। उसे ही 'तेजोलोक' या 'परलोक' भी कहा गया है । परन्तु परमात्मा उस धाम से इस सृष्टि में कहीं भी संकल्प से भी अधिक तीव्र गति से पहुंच सकते हैं। अत: उन्हें कहीं भी याद किया जा सकता है तथा वह कहीं भी, और कभी भी,अपने दिव्य रूप का साक्षात्कार करा सकते हैं । इस बात को देखकर तथा वैसे भी प्रेम-विभोर होकर उनकी महिमा करते-करते भक्तों ने उन्हें सर्वव्यापक मान लिया है । परन्तु वास्तव में परमात्मा की संज्ञा सर्वव्यापक नहीं है; उनकी अनुभूति, उनकी

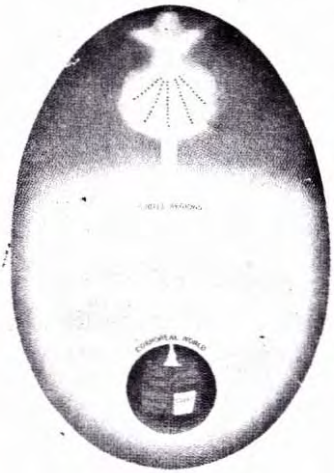

महत्ता, उनकी स्मृति, उनका ध्यान सर्वत्र हो सकता है ।

परमपिता परमात्मा का अविनाशी, अपरिवरत्तनीय; अखण्ड, अकाय और ज्योर्तिमय-रूप तो ज्योति-बिन्दु जैसा ही है परन्तु भक्त लोग तन्मय होकर अपने-अपने इष्ट को याद करते हैं तो परमपिता परमात्मा शिव उनकी भावनाओं को पूर्ण करने के लिए उनके इष्ट का साक्षात्कार उन्हें करा दिया करते हैं । इस से कई लोग यह समझ लेते हैं कि परमात्मा का अपना तो कोई रूप नहीं है, वह केवल भक्ति की भावना पूर्ण करने के लिए कोई भी रूप धारण कर लिया करते हैं । वास्तव में यह मान्यता गलत है । परमात्मा का अपना रूप तो ज्योति-बिन्दु है ही जैसे कि अन्य सभी आत्माओं का है, परन्तु भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के लिए वे उन्हें उनके इष्ट का साक्षात्कार करा दिया करते हैं ।

परमात्मा के गुण और उनकी महिमा

वास्तव में परमात्मा की जो महिमा है, वह अन्य किसी भी आत्मा की नहीं हो सकती । देवताओं की महिमा भी उनकी महिमा से भिन्न है । परमात्मा ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, पतित-पावन, सर्वशक्तिमान्, सुख-शान्ति के स्वर्गिक राज्य के दाता, दिव्य-दृष्टि विधाता, विकारों रूपी दलदल से मनुष्य- मात्र को निकालने वाले, मुक्ति और जीवन्मुक्ति के दाता अथवा गति और सद्गति के एक-मात्र दाता हैं । उनकी शरण लेने से अथवा उनकी आज्ञाओं के अनुसार चलने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

परमात्मा से सम्बन्ध

परमात्मा हम सभी मनुष्यात्माओं के पारलौकिक पिता हैं । उनके साथ तो हमारा अविनाशी सम्बन्ध है । वह जब धर्मग्लानि के समय अवतरित होते हैं तो प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा ज्ञान और योग सिखाकर

वह मनुष्यात्माओं को मरजीवा जन्म देते हैं। इस प्रकार, वह न केवल परमपिता हैं, बल्कि परमशिक्षक और सद्गुरु भी हैं। उनके साथ ही तो वास्तव में हमारे सभी आत्मिक सम्बन्ध हैं। मनुष्यात्मा अपनी बुद्धि का सम्बन्ध जितना-जितना उनसे जोड़ती है और कर्मणा में भी उस सम्बन्ध को जितना-जितना बनाती है, उतनी-उतनी उसके जीवन में सुख-शान्ति आती है। इस प्रकार संक्षेप में परमात्मा का परिचय दिया गया है। इसे विस्तार से परमात्मा के कर्त्तव्यों-सहित जानने से, मनुष्य का मन परमात्मा की स्मृति में टिक सकता है और मनुष्य मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसके लिए प्रजापिता ब्रह्मा-कुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय के किसी भी सेवा-केन्द्र पर पधार कर लाभ उठाया जा सकता है।

परमात्मा के दिव्य-कर्त्तव्य

कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि के संगम समय प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा ज्ञान के माध्यम से सत्धर्म अथवा सतयुगी सृष्टि की स्थापना का कर्त्तव्य करने के अतिरिक्त, निराकार परमात्मा शिव, महादेव शंकर के द्वारा कलियुगी सृष्टि का महाविनाश भी कराते हैं। परिणामस्वरुप, सभी मनुष्यात्माएं देह से मुक्त होकर तथा धर्मराजपुरी में अपने विकर्मों का दण्ड भोगकर ब्रह्मलोक अथवा निर्वाणधाम (शिवपुरी) में मुक्त अवस्था को प्राप्त होती हैं और, इस महाविनाश के पूर्व जो मनुष्यात्माएं प्रजापिता ब्रह्मा के द्वारा दिये गये ईश्वरीय ज्ञान और सिखाए गए सहज राजयोग की शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को पवित्र करती हैं और अपने पूर्व-जन्मों के विकर्मों को दग्ध करती हैं, वे भी कुछ काल निर्वाणधाम में मुक्त अवस्था में रहने के बाद सतयुग और त्रेतायुग की सम्पूर्ण सुख-शान्ति सम्पन्न दैवी-सृष्टि में राज्य-भाग्य अथवा जीवन्मुक्ति

भोगती हैं। उस ईश्वरीय ज्ञान और राजयोग को अपने जीवन में धारण करने के फलस्वरुप प्रजापिता ब्रह्मा और उनकी मुख-वंशी कन्या जगदम्बा सरस्वती, उस ईश्वरीय ज्ञान के द्वारा सतयुग के आरम्भ में पवित्र श्री नारायण और श्री लक्ष्मी के रूप में अटल, अखण्ड तथा निर्विघ्न राज्य करते हैं। उनकी आठ पीढ़ियाँ १२५० वर्ष तक चलती हैं उसके बाद त्रेतायुग में श्री सीता व श्री राम का सुख-शान्ति सम्पन्न राज्य होता है जिसको भी आज तक भारतवासी 'राम-राज्य' के नाम से याद करते हैं। त्रेतायुग में चंन्द्रवंश की बारह पीढ़ियाँ १२५० वर्ष तक चलती हैं परन्तु दैहिक सम्बन्धों में बरतते-बरतते तथा सुख की प्रारब्ध समाप्त हो जाने के बाद यही दैवी स्वभाव वाली आत्माएं वाम मार्ग में चली जाती हैं, अर्थात् देह-अभिमानी हो जाती हैं: तब वे काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि विकारों के वशीभूत होने लगती हैं और तब विकारों तथा दु:खों से छुटकारा पाने के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ, तप, वेद, शास्त्र, पूजा, भक्ति, योग इत्यादि शुरू होते हैं। परन्तु मनुष्य-सृष्टि में दिनों-दिन तमोगुण, कलह-क्लेश अशान्ति, अधर्म, पापाचार इत्यादि बढ़ता ही जाता है और इस प्रकार २५०० वर्षों अथवा ६३ जन्मों के बाद, आखिर पुन: कलियुग का अन्त आ पहुँचता है।

जब ऐसा तमोप्रधानता का समय आ पहुँचता है, तब सत्य धर्म की अथवा दैवी सम्प्रदाय की पुन: स्थापना के लिए निराकार परमपिता परमात्मा शिव सतयुगी श्री नारायण के अन्तिम अर्थात् ८४ वें जन्म लेने वाले वृद्ध-तन (जिसको वह अब 'प्रजापिता ब्रह्मा' नाम देते है) में प्रवेश होकर पुन: सहज ईश्वरीय ज्ञान और, सहज राजयोग सिखलाते हैं और, इस प्रकार, पुन: मनुष्य-मात्र की गति और सद्गति करते हैं अर्थात् उन्हें मुक्ति और जीवन्मुक्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्रदान करते

हैं। अन्ते, वह सभी मनुष्य मात्र को मुक्ति देने के लिए, शंकर देवता के द्वारा कलियुगी, देह-अभिमानी, ईश्वर-विमुख भारतवासी मनुष्यों (जिन्हें 'कौरव' कहना चाहिए) को प्रेरकर गृह-युद्धों के द्वारा तथा रूस, अमेरिका तथा यूरोप के देह-अभिमानी, आसुरी और ईश्वर-विमुख वैज्ञानिकों (जिन्हें ही वास्तव में 'यादव'कहना चाहिए) को प्रेरकर महाभारी मूसलों तथा अणुबमों इत्यादि के द्वारा महाविनाश कराते हैं।

मालूम रहे कि वर्तमान् युग कल्याणकारी पुरुषोत्तम संगमयुग है। अब कलियुग का अन्त और सतयुग के आरम्भ का संधि काल है। अब परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा के मुख कमल से ईश्वरीय ज्ञान एवं सहज राजयोग की शिक्षा देकर नई सृष्टि की पुन: स्थापना कर रहे हैं और कलियुगी सृष्टि के महाविनाश के चिन्ह तो आप देख ही रहे हैं।

आत्मायें अनेक और परमात्मा एक है

–परमात्मा ब्रह्म नहीं, ब्रह्मधाम का वासी है–

आज भारत में अद्वैत वेदान्त का बहुत प्रचार है। इस मत के अनुसार मनुष्य स्वयं को अर्थात् आत्मा क़ो ब्रह्म से अभिन्न मानता है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि वह स्वयं को परमात्मा ही का रूप मानता है। निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो यह सिद्धान्त ग़लत है और इससे भारत को बहुत हानि हुई है और इसके फलस्वरूप यहाँ नास्तिकता को एक नये रूप में जन्म मिला है। परन्तु आज लोग इसे सर्वोच्च कोटि का ज्ञान मानते हैं और बहुत-से विदेशी लोग भी इसी वाद को ही भारत का दर्शन अथवा ज्ञान मानते हैं। यदि वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाय तो यह मत मिथ्या ज्ञान पर अवलम्बित है और इसने योग, ध्यान, ज्ञान आदि-आदि सभी को नष्ट करके भारत को कंगाल बना दिया है। इस सत्यता को स्पष्ट करने के लिए यहाँ इस सिद्धान्त के बारे में एक संवाद दिया गया है। इसमें अद्वैत वेदान्ती और शिव*-योगी, अर्थात् परमात्मा को स्वयं से भिन्न ज्योति-स्वरूप, अशरीरी और कल्याणकारी मानकर उससे योग लगाने वाले व्यक्ति में एक ज्ञान-वार्त्तालाप दिया गया है। स्वाभाविक है कि इस छोटे-से लेख में दोनों पक्षों के सभी दृष्टान्त नहीं दिये जा सकते और न ही सभी युक्तियाँ पेश की जा सकती हैं। अधिक स्पष्टीकरण तथा उसकी सत्यता का अनुभव तो सम्मुख पधार कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

अद्वैत वेदान्ती- (शिव-योगी से मिलने पर कहता है) कहो भाई, कैसे हो ? मंगल-कुशल तो है ?

---

* यहाँ शिव शंकर देवता का वाचक नहीं है बल्कि ज्योतिस्वरूप परमात्मा का वाचक है जोकि ज्योति-बिन्दु रूप वाले हैं। 'कल्याणकारी' होने के कारण ही परमात्मा को 'शिव' कहा गया है

शिव योगी- ठीक हूँ। कल्याणकारी परमपिता परमात्मा शिव से योग-युक्त होने से, अर्थात् उसकी स्मृति में स्थित होने से मनुष्य ठीक तो होता ही है। भला सुनाइये, आप कैसे हैं?

अद्वैत वेदान्ती- मैं भी ठीक ही हूं। शिवोऽहम्, शिवोऽहम्! अच्छा तो आप परमात्मा को 'पिता' मानकर अर्थात् उसे स्वयं से भिन्न मानकर उसकी स्मृति में रहते हैं? खैर, जिसको जितना ज्ञान है, उसके अनुसार ही वह पुरुषार्थ करता है। परन्तु वास्तव में अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से तो आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा से भिन्न दूसरा तो कुछ है ही नहीं, फिर याद किसको करें? मनुष्य 'आत्मा' को परमात्मा से भिन्न तभी तक मानता है अथवा उसकी स्मृति का अभ्यास तभी तक करता है जब तक कि उसे यह पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ हो कि तत्त्व तो एक ही है अथवा कि यह जो कुछ अलग-अलग और भिन्न-भिन्न दिखाई दे रहा है, यह भी वास्तव में सब एक ही है। जब उसे ऐसा 'तत्त्व-ज्ञान' हो जाता है,तब वह स्वयं को परमात्मा से भिन्न नहीं मानता। अत: परमात्मा को 'पिता' मानना अथवा उसे स्वयं से भिन्न मानना तो वास्तव में एक प्रकार से अज्ञानता अथवा मिथ्या ज्ञान है।

शिव योगी- जबकि प्रत्यक्ष रूप से सब अलग-अलग और भिन्न-भिन्न अनुभव हो रहा है और विवेक से भी इस बात का समर्थन होता है कि अनेक देहों में अनेक आत्माएं ही अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार कर्म कर रही हैं, और इसलिए, अलग-अलग ही कर्म-फल भी भोग रही हैं, तो आप कैसे कहते हैं कि यह सब एक ही हैं? हर-एक जन्म-मरण और फलभोग अलग-अलग स्थान पर, अलग-अलग समय पर अथवा भिन्न-भिन्न रीति से, भिन्न-भिन्न ही होता है, तब कैसे माना जाय कि सब आत्माएं एक-दूसरे

से अभिन्न हैं ? ,एक आत्मा को 'महात्मा' और दूसरी को 'पापात्मा' कहा जाता है क्योंकि उनके गुणों में तथा आचरण में भिन्नता है, तब सब एक आत्मा कैसे हुए ? और जबकि सामान्य आत्माओं की तुलना में उच्च आत्मा को 'महात्मा' कहा जाता है तो सर्वोच्च आत्मा को 'परमात्मा' कहने में क्या आपत्ति है ? और यदि सर्वश्रेष्ठ आत्मा को 'परमात्मा' कहना युक्ति-युक्त है, तब तो आत्माओं का अनेक होना सिद्ध ही है क्योंकि आत्माओं को अनेक मानने पर ही उन्हें 'महात्मा', 'श्रेष्ठ आत्मा' आदि-आदि कहा जा सकता है ।

आपके और हमारे बीच जो बात हो रही है, स्वयं इससे भी सिद्ध है कि मन्तव्य अलग हैं, कर्त्तव्य अलग हैं, स्वभाव अलग हैं तभी तो तभी एक-दूसरे का मंगल-कुशल भी पूछने की यह रीति है । क्योंकि एक के मंगल-कुशल होने से सबका मंगल-कुशल नहीं होता बल्कि हर-एक की अवस्था अलग-अलग है । अत: हर युक्ति से यही सिद्ध होता है कि यह सृष्टि एक विराट् खेल है, इसमें अनेक आत्माएं हैं और उनके भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य हैं और 'परमात्मा' शब्द उस विशेष आत्मा का वाचक है जिसका कभी अमंगल और अकुशल नहीं होता बल्कि वह दूसरों का भी कल्याण करने के कारण 'शिव' कहाता है और, इसलिए, 'परमपिता' तथा 'परम शिक्षक'एवं 'परम सद्गुरू' भी कहाता है । इसलिए लोग उसका गायन करते हुए कहते भी हैं-

त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वम् मम् देव देव ।

अन्य लोग उसे 'परम पुरुष' 'पुरुषोत्तम', और 'परमात्मन्'

आदि-आदि नाम देते हैं और "ओ३म् नमो शिवाय" आदि वन्दना सूचक शब्दों से भी संकेत मिलता है कि वे परमात्मा को ही कल्याणकारी, स्मरणीय, उपास्य, योग का आधार अथवा लक्ष्य या ध्येय मानते हैं। तब आप भला आत्मा को परमात्मा से अभिन्न कैसे मानते हैं?

क्या भेद केवल नाम-रूपात्मक है; तत्त्व एक है?

अद्वैत वेदान्ती- वास्तव में यह जितनी बातें आपने की हैं, यह सब भ्रम अथवा अविद्या पर आधारित हैं। ये 'तत्त्व-ज्ञान' के विपरीत हैं। तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से तो सब एक ही हैं, दूसरा कोई है ही नहीं। मैं यह बात कुछ दृष्टान्तों द्वारा स्पष्ट करता हूँ। आप चीनी के खिलौनों का ही दृष्टान्त लीजिए। चीनी को साँचों में ढालकर उससे 'हाथी', 'घोड़ा', 'राजा' महल आदि-आदि बनाया जाता है। अब यद्यपि इन सभी के रूप भिन्न-भिन्न हैं और नाम भी 'घोड़ा', 'हाथी','राजा' इत्यादि भिन्न-भिन्न हैं तथापि इन सबका तत्त्व तो एक चीनी ही है। चीनी के सिवा तो यह कुछ भी नहीं हैं, इनका कोई आधार और अस्तित्त्व नहीं है। इन खिलौनों में जो पारस्परिक भेद हैं, वह केवल नाम-रूप ही का भेद है, इनका तत्त्व तो एक ही है। जो मनुष्य इनके नाम-रूप की भिन्नता के कारण इन्हें भिन्न-भिन्न मानता है, वह गलती करता है। तत्त्व-ज्ञानी इनके तत्त्व को जानता है और उस दृष्टि से इनको एक ही मानता है। आप यह भी मानेंगे कि आखिर एक दिन इन सभी के नाम-रूप तो मिट जाते हैं और तत्त्व ही रह जाता है। अर्थात्, जिस चीनी से ये खिलौने बने हैं, केवल वही रह जाती है। वही एक सत्ता है जो कि इन सभी खिलौनों में है और वही इन सभी का आधार है इसी प्रकार, ये जो अनेक नाम-रूप वाले जीव-प्राणी हमें दीखते हैं, ये भी वास्तव में तत्त्व की दृष्टि से एक ही हैं। इनमें भी केवल नाम-रूप ही का भेद है और भेद भी अल्प-स्थायी अथवा विनाशी

है। इनकी अविनाशी सत्ता तो एक आत्मा ही है।

इसी प्रकार, कपड़े के एक ही थान में से कोट, कमीज़, पायजामा और कच्छा इत्यादि अनेक वस्त्र बनाए जा सकते हैं। यद्यपि इनके भी नाम-रूपादि भिन्न-भिन्न हैं तथापि इनका मूल-तत्त्व तो एक 'कपड़ा' ही है। ऐसे अन्य भी बहुत-से दृष्टान्त देकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि आत्मा ही एक-मात्र अविनाशी तत्त्व है और उस एक आत्मा से भिन्न दूसरा कुछ है ही नहीं। परमात्मा भी हम से कोई अलग सत्ता नहीं है और उपास्य-उपासक, पूज्य-पूजक या साध्य-साधक आदि का भेद केवल काल्पनिक है अथवा वह अज्ञानता ही के कारण है।

गुणों का भेद अनेकता सिद्ध करता है

शिव योगी- आपने चीनी के खिलौने का जो दृष्टान्त दिया है, वास्तव में तो वह दृष्टान्त भी ठीक नहीं है क्योंकि चीनी के खिलौनों में हम देखते हैं कि उनमें केवल नाम-रूप ही का भेद है उनमें गुणों का भेद नहीं है परन्तु संसार में जो जीव-प्राणी हैं, उनमें केवल नाम-रूप का भेद नहीं है बल्कि गुण-कर्म, स्वभाव-प्रभाव, कर्म-भोग, मन्तव्य आदि-आदि का भी थोड़ा-बहुत भेद अवश्य है। कोट, कमीज़, पायजामें या कच्छे में भी गुणों का भेद नहीं है। उनके गुण भी कपड़े के गुणों के समान ही हैं और आपस में भी एक-समान हैं, परन्तु हम संसार में देखते हैं कि एक ही माता-पिता के दो पुत्रों में भी समान गुण नहीं हैं, न ही उनका भाग्य एक समान है। संसार में सबका स्थान और मान भी एक नहीं है। कोई महान् है, कोई सामान्य है, कोई श्रेष्ठाचारी भी हो सकता है, अन्य कोई भ्रष्टाचारी भी। कोई बड़ा है, तो कोई छोटा। सब एक-ही-एक मानने से तो मर्यादा ही नष्ट हो जाती है, अनुशासन और नियन्त्रण, व्यवस्था और व्यवहार भी नहीं हो सकता। तत्त्व एक है ही नहीं तो एक मानें कैसे ?

भेद उपाधि का है

अद्वैत वेदान्ती- छोटे-बड़े का भेद केवल उपाधि का भेद है। यह कोई वास्तविक भेद नहीं है। उदाहरण के तौर पर मिट्टी से किसी कुम्हार ने घड़ा, लोटा, लुटिया, प्याली आदि बना लिए। अब इनमें से घड़ा बड़ा है, प्याली छोटी है। परन्तु यह 'बड़े-छोटे' का भेद क्षणिक है तथा यह केवल उपाधि का भेद है। तत्त्व तो दोनों का एक 'मिट्टी' है। तत्त्व की दृष्टि से उनमें भिन्नता नहीं है। जब दोनों का नाम-रूप मिट जाता है और उपाधि भी नष्ट हो जाती है, तब दोनों की मिट्टी में आप कुछ भी भिन्नता नहीं कर सकते और यह नहीं कह सकते कि अमुक मिट्टी घड़े की है और अमुक मिट्टी प्याली की है। मिट्टी तो एक ही है। इसी प्रकार, आत्मा अथवा तत्त्व तो एक ही है, भिन्नता केवल नाम-रूप -उपाधि के कारण है जो कि अविनाशी नहीं है। अत: सत् पदार्थ अथवा अविनाशी पदार्थ तो एक 'आत्मा' ही है। आत्माएं अनेक नहीं हैं और न ही अनेक सिद्ध हो सकती हैं। हाँ, संसार में व्यवहार की दृष्टि से तो भेद है परन्तु तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से कोई भी भेद नहीं है।

शिव योगी- ग़लत बात को सिद्ध करने के लिए जितने भी दृष्टान्त दिए जाते हैं, उनमें भी कोई-न-कोई त्रुटि अवश्य होती है। इसी प्रकार, अब आपने जो दृष्टान्त दिया है वह भी ग़लत है। आपने घड़े, लोटे,प्याली आदि का जो दृष्टान्त दिया है उस दृष्टान्त में सभी चीजें मिट्टी ही की बनी हुई हैं जो कि केवल सत् वस्तु हैं परन्तु वह सत्-चित् नहीं हैं। अर्थात्, वह चैतन्य स्वरूप नहीं हैं। अत: लोटे और प्याली में केवल सत् ही के छोटे और बड़े रूप का भेद है। उनमें चेतना का भेद नहीं है, संस्कारों का भेद नहीं है, अनुभव का भेद नहीं है, विचारों तथा आचारों का भेद नहीं है अर्थात् कोई मौलिक भेद नहीं है। उन्हीं वस्तुओं का आपने फिर भी

दृष्टान्त दिया है जिनमें केवल रूप ही के छोटे-बड़े होने का भेद है । पहले भी आपने चीनी के खिलौनों का जो दृष्टान्त दिया था उनमें रूपों का नाम भिन्न-भिन्न था अर्थात् किसी का नाम 'हाथी', किसी का 'घोड़ा', और किसी का 'राजा' था और अब रूपों की लम्बाई-चौड़ाई-ऊंचाई भिन्न-भिन्न हैं । दृष्टान्त फिर भी रूप ही की भिन्नता के बारे में है परन्तु उनके मौलिक स्वभावों की भिन्नता के बारे में नहीं है । हम जो आत्माओं की अनेकता की बात करते हैं, वह उनके मौलिक स्वभाव की भिन्नता के आधार पर कहते हैं, न कि उनके नाम या रूप की भिन्नता के आधार पर । अत: आपके दृष्टान्त में यह त्रुटि है कि यह भी नाम-रूप ही के बारे में है जबकि हम संसार में जीवों के बारे में देखते हैं कि उनके नाम व रूप की भिन्नता तो दैहिक भिन्नता है परन्तु जीवात्माओं में पारस्परिक भिन्नता तो उनकी चेतना में* अर्थात् उनकी अनुभूति में, उनकी मनसा में, उनकी मति में, उनकी वृत्ति में, उनके मूलभूत मन्तव्यों में भिन्नता के कारण हैं ।

आत्माओं में नाम-रूप की भिन्नता तो है ही नहीं क्योंकि उन सभी का नाम 'आत्मा' और रूप ज्योति-बिन्दु अथवा 'ज्योति-कण' है । भिन्नता तो उनके स्वभाव तथा संस्कारों में है जिसके परिणाम-स्वरूप उनको शरीर भी भिन्न-भिन्न रूपों वाले मिलते हैं । वह संस्कारों-विचारों की भिन्नता ही मौलिक भिन्नता है । आपके दृष्टान्त में दूसरी त्रुटि यह है कि उसमें जिस घड़े, लोटे, प्याली आदि का वर्णन है, वे सत् पदार्थ नहीं हैं, बल्कि सत् पदार्थ नहीं हैं, बल्कि सत पदार्थ केवल मिट्टी अथवा प्रकृति ही है जिसमें वे टूटने के बाद मिल जाते हैं और एक-रूपता को प्राप्त हो

* आगे एक लेख में स्पष्ट किया गया है कि मन- बुद्धि आत्मा ही की चेतन शक्तियाँ हैं; वे प्रकृतिकृत नहीं हैं ।

जाते हैं। परन्तु आत्माएं तो सत् हैं; वे घड़े, लोटे, प्याली आदि की तरह नष्ट नहीं होती और उनके गुण-कर्म, स्वभाव-प्रभाव, फल-भोग आदि में जो भी अन्तर है वह भी अविनाशी है क्योंकि आत्माओं का अस्तित्व अनादि और अविनाशी है। जिस घड़े, लोटे, प्याले आदि के दृष्टान्त आपने दिये हैं, यदि उन सभी का अपना-अपना अस्तित्त्व अनादि और अविनाशी होता और यदि उनके गुणों में भी भेद होता,तब उनका नाम-रूप का भेद या छोटेपन-बड़ेपन का भेद या उनके अस्तित्त्व की भिन्नता भी अनादि और अविनाशी होती तब आप उन्हें 'एक'न मानते। परन्तु चूँकि वह घड़ा, लोटा, प्याली आदि सत् पदार्थ नहीं हैं अर्थात् अनादि और अविनाशी नहीं हैं और उनका भेद भी केवल नाम-रूप का तथा रूप ही के छोटे-बड़े होने का भेद है और उनमें अन्य कोई मौलिक गुण-भेद या अविनाशी-भेद नहीं है, इसलिए आप कहते हैं, कि वह तत्त्व की दृष्टि से एक हैं। आप किन्हीं ऐसी वस्तुओं का दृष्टान्त दीजिए जो अनादि और अविनाशी हों और उनमें कोई मौलिक स्वभाव-भेद हो और उनसे आपका सिद्धान्त भी पुष्ट होता हो। ऐसा दृष्टान्त तो आपको हजार प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलेगा अत: हमारा कहना तो यह है कि आत्माएं जो कि अनादि और अविनाशी हैं, उनमें गुण, कर्म स्वभाव आदि का भेद भी अनादि और अविनाशी है, इसलिए वे अनेक हैं और भिन्न-भिन्न हैं और उनमें से जो सर्वश्रेष्ठ है, उसी को 'परमात्मा' कहा जाता है।

आत्माएं अनेक और परमात्मा एक है

– परमात्मा ब्रह्म नहीं ब्रह्मधाम का वासी है–

(संवाद २)

अद्वैत वेदान्ती- मैं कहता हूं कि वास्तव में आत्माएं अनेक नहीं हैं, न ही उनमें कोई भिन्नता है । अनेक नामों, रूपों वाले जीवों की इस सृष्टि में केवल भ्रम के कारण ही हमें अनेकता प्रतीत होती है । सत्यता की दृष्टि से देखा जाय तो यह अनेकता है नहीं । इस बात को हम एक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं । मान लीजिए कि एक मनुष्य बाहर सड़क पर जा रहा है । सायंकाल का समय है, सड़क पर थोड़ा अंधेरा है,उस मनुष्य ने रास्ते में एक रस्सी देखी और वह उसे साँप समझकर डर गया । अब रस्सी वास्तव में तो मनुष्य को काटने वाली चीज़ या ज़हरीली चीज़ नहीं है और उससे डरने या चौंकने की कोई आवश्यकता भी नहीं है । परन्तु भ्रान्ति के कारण मनुष्य उसे साँप समझ बैठता है और मनुष्य की भ्रान्ति का कारण होता है-अंधेरा । उस अंधेरे तथा भ्रान्ति के कारण मनुष्य को रस्सी में साँप प्रतीत होता है, अर्थात् जो वस्तु वास्तव में नहीं है, वह दीखती है । इसी प्रकार, मनुष्य को अविद्या रूपी अंधकार के कारण ही भ्रान्ति है और इस भ्रान्ति के कारण ही वह जीवात्माओं में अनेकता तथा भिन्नता देखता है जो कि वास्तव में है नहीं परन्तु केवल दीखती है, अर्थात् प्रतीत होती है ।

यही बात सीपी और चाँदी के दृष्टान्त से सिद्ध की जा सकती है । अंधकार में मनुष्य, मार्ग में पड़ी हुई किसी सीपी को चाँदी समझकर उठाने लग जाता है और मन में सोचता है कि मैं इससे ज़ेवर बनवाऊंगा, परन्तु वह चाँदी प्रतीति-मात्र ही है । वास्तव में तो वह सीपी ही है और उससे ज़ेवर नहीं बन सकते । इसी प्रकार, संसार में जो अनेक-रूपता और

भिन्नता दिखाई देती है, यह भी भ्रॉति और अविद्या ही के कारण है । यह वास्तविक नहीं है । जब मनुष्य को ज्ञान अथवा विद्या रूपी प्रकाश प्राप्त होता है, तब उसकी भ्रान्ति मिट जाती है और उसे वास्तविक ज्ञान हो जाता है और तब उसे अनेक-रूपता और भिन्नता प्रतीत नहीं होती । इसलिए मैं कह रहा था कि आत्मा एक ही है । यह जो-कुछ भी व्यक्त या अव्यक्त है या नाना रूपों वाला भासता है, यह सब ब्रह्म ही है । ये नाना रूप जो दिखाई देते हैं, वे प्रतीति-मात्र हैं, वास्तविक नहीं हैं । वह आत्मा अथवा ब्रह्म अनन्त ज्ञान और आनन्द स्वरूप है । उस ब्रह्म की माया शक्ति के कारण ही ये अलग-अलग जीव प्रतीत हो रहे हैं । जब जीवात्मा को तत्त्व-ज्ञान होता है तो वह माया के प्रभाव से मुक्त होता है, तब उसे ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नहीं भासता, कुछ भी भिन्न नहीं प्रतीत होता ।

दृष्टान्त पर विचार

शिव योगी- ये जो आपने दृष्टान्त दिए हैं, ये तो आपके सिद्धान्त के विपरीत जाते हैं । आप ज़रा इन पर यदि निष्पक्ष भाव से विचार करेंगे तो देखेंगे कि आपके दृष्टान्तों के पाँचों पहलुओं से आत्मा की अनेकता और उनकी पारस्परिक भिन्नता ही सिद्ध होती है ।

दृष्टान्त पर विचार करने से आप मानेंगे कि भ्रम तभी सम्भव होता है जब दो चीजें हों और उन में कुछ समानता हो । यदि एक ही चीज़ हो तो भ्रम हो ही नहीं सकता । उदाहरण के तौर पर यदि संसार में केवल रस्सी ही हो और 'सर्प' नाम का कोई जीव होता ही न हो तो कभी भी किसी भी मनुष्य को रस्सी में सर्प की प्रतीति या भ्रम नहीं हो सकता । अथवा यदि संसार में सर्प तो होता हो परन्तु रस्सी नाम की कोई चीज़ कभी होती ही न हो तो भी मनुष्य को साँप में रस्सी का भ्रम नहीं हो

सकता। भ्रम तभी हो सकता है जब संसार में सर्प भी कहीं होते हों और रस्सी भी होती हो। यदि एक ब्रह्म के अतिरिक्त संसार में दूसरा कुछ हो ही न जैसे कि आप मानते हैं, तब तो भ्रम या भ्रान्ति हो ही नहीं सकती। भ्रान्ति तो तभी हो सकतीं है जब कम-से-कम दो वस्तुएं हों जैसे कि दृष्टान्त में सर्प भी है और रस्सी भी है और दोनों अलग-अलग तथा भिन्न-भिन्न वस्तुएं हैं। अत: जब कि आप केवल एक ब्रह्म-तत्त्व ही को मानते हैं और दूसरा कुछ मानते ही नहीं तब तो आपका दृष्टान्त ही नहीं बनता क्योंकि मैं पहले भी स्पष्ट कर चुका हूं कि एक तत्त्व से तो भ्रान्ति हो ही नहीं सकती।

दूसरी बात यह है कि भ्रम के लिए न केवल रस्सी और साँप दोनों का होना ज़रूरी है बल्कि यह भी जरूरी है कि जिस मनुष्य को भ्रम होता है उसने पहले दोनों चीजें देखी हुई भी हों। उदाहरण के तौर पर यदि किसी मनुष्य ने संसार में रस्सी तो कभी देखी है परन्तु साँप को कभी भी नहीं देखा तो उसे रस्सी में साँप का भ्रम कभी भी नहीं हो सकता। अत: यदि किसी को यह भ्रम हो रहा है कि आत्माएं अनेक हैं, तो इस भ्रम से भी यही सिद्ध होता है कि उसने पहले भी अनेक आत्माएं देखीं, जानीं या अनुभव की हैं वरना यदि एक के सिवाय उसने दूसरी देखी,जानी या अनुभव ही न की होती तो उसे दूसरे का भ्रम भी न हो सकता। पुनश्च, चूंकि आत्मा (जीव) अनादि है, इससे स्पष्ट है कि अनादि काल से आत्माओं की अनेकता अनुभव करती आ रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि अनादि काल से ही आत्माएं अनेक तथा भिन्न-भिन्न हैं। जो अनादि काल से भिन्न-भिन्न हैं, वे तो सदा भिन्न-भिन्न रहेंगी ही। अत: इससे भी आपके सिद्धान्त का खण्डन होता है।

तीसरे, मैं आपसे यह पूछता हूँ कि भ्रम किसे होता है, 'ब्रह्म' को या

'जीवात्मा' को ? आपके अपने मन्तव्य के अनुसार ब्रह्म को तो भ्रम होना नहीं चाहिए क्योंकि आपने स्वयं ही कहा है कि ब्रह्म अनन्त ज्ञान और आनन्द-स्वरूप है । अत: जिसमें अनन्त ज्ञान है, उसको तो भ्रम होना ही नहीं चाहिए क्योंकि जहाँ प्रकाश होता है वहाँ तो अंधेरा नहीं टिक सकता । जिसमें अनन्त ज्ञान है, वहाँ माया, अविद्या अथवा भ्रम टिक सकना नहीं चाहिए । यदि आप कहें कि ब्रह्म को तो भ्रम नहीं होता परन्तु जीवात्माओं को भ्रम होता है तो यह कथन भी आपके अपने मन्तव्य के विरुद्ध है क्योंकि आप तो कहते हैं कि जीवात्मा भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है और कि एक ब्रह्म के सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं । अत: आपका दृष्टान्त फिर भी नहीं टिकता क्योंकि ब्रह्म को तो भ्रम होना नहीं चाहिए (चूंकि आपके कहने के अनुसार वह अनन्त ज्ञानवान है) और ब्रह्म के सिवा दूसरा कोई है ही नहीं कि जिसको भ्रम हो ।

चौथे, यदि आपके कहने के अनुसार यह मान लिया जाय कि भ्रम जीवात्माओं को होता है तो भी यह मान्यता आपके सिद्धान्त के इसलिए भी विपरीत है कि आप तो आत्माएं अलग-अलग मानते ही नहीं हैं बल्कि आप तो कहते हैं कि जब ब्रह्म को भ्रम होता है तभी माया के अधीन हुआ वह ब्रह्म स्वयं को अलग अलग आत्माएं मानता है । अत: एक ओर यह कहना कि आत्माओं को भ्रम होता है और दूसरी ओर यह कहना कि आत्माएं अनेक भासती ही तब हैं जब ब्रह्म को भ्रम होता है—यह तो दोष-पूर्ण और एक-दूसरे पर आधारित तर्क हैं और फिर भी दोनों स्थितियों में अनेक आत्माएं तो सिद्ध होती ही हैं । अत: सत्य सिद्धान्त यह हुआ कि आत्माएं सदा अनेक हैं ।

पाँचवें, हम आपसे पूछते हैं कि जिसे आप अनन्त ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप 'ब्रह्म' मानते हैं वह समस्त ही माया द्वारा प्रभावित तथा आवेष्ठित

है या उसका कुछ खण्ड ही माया के प्रभाव में है ? यदि आप कहें कि समस्त ब्रह्म माया से आवेष्ठित है अर्थात् उससे प्रभावित है, तब तो आपके कथन से सिद्ध हुआ कि सारे ब्रह्म को माया के कारण भ्रम है और तब तो उसे 'अनन्त ज्ञान' एवं 'आनन्द स्वरूप' मानना ही ग़लत है । यदि आप कहें कि उसका कुछ खण्ड ही माया से प्रभावित है और वही स्वयं को भ्रान्ति अथवा अविद्या के कारण अलग-अलग जीवात्माएं मान रहा है, तब तो ब्रह्म अनन्त और अखण्ड न हुआ, परन्तु आप तो मानते हैं कि वह अनन्त और अखंड है । और उसका कुछ खण्ड तो ज्ञानवान हुआ और कुछ माया या अविद्या से प्रभावित हुआ और ऐसी स्थिति में ब्रह्म का कोई स्थायी लक्षण अथवा उसकी कोई स्थायी परिभाषा (Defination) भी न होगी । पुनश्च, ब्रह्म का जो खण्ड माया के प्रभाव में है, यदि वह खण्ड डोलता रहता है अर्थात् चलता रहता है तो जहाँ-जहाँ वह होता होगा वहाँ-वहाँ का ब्रह्म भ्रम वाला होता होगा और जहाँ-जहाँ वह नहीं होता होगा वहाँ-वहाँ ब्रह्म अविद्या-रहित या माया-रहित होता होगा । इस प्रकार, कौन से देश में मायातीत ब्रह्म है और कौन-से देश में माया से प्रभावित ब्रह्म है, यह कुछ भी निश्चित न होगा ।

पुनश्च, आपका तो ज्ञान लेना तथा सारा पुरुषार्थ करना भी व्यर्थ रहेगा क्योंकि आज यदि आप ज्ञान प्राप्त करके भ्रम-मुक्त हो जाते हैं और स्वयं को 'ब्रह्म' मानते तथा उसका अनुभव करते हैं तो शरीर-मुक्त होने के बाद आप स्वयं जो ब्रह्म हैं, आप फिर भी तो तुरन्त माया से आवेष्ठित अथवा प्रभावित हो सकते हैं । अत: यह क्या गारन्टी रही कि आज 'ब्रह्मलीन' होने के बाद कल ही आप पुन: भ्रम के प्रभाव में नहीं आयेंगे जबकि आप पहले भी माया द्वारा आवेष्ठित हो गए थे ? इस प्रकार आप देखेंगे कि न आपका सिद्धान्त टिकता है, न ही दृष्टान्त और

न ही पुरुषार्थ ।

इसके अतिरिक्त, मैं पूछता हूँ कि आप माया किसे कहते हैं ? आप माया से कब प्रभावित हुए ? अथवा, ब्रह्म माया से क्यों प्रभावित होता है, अथवा ब्रह्म, माया या भ्रम द्वारा जीवों को जन्म-मरण के चक्कर में क्यों डालता है ?

अद्वैत वेदान्ती-'माया' ब्रह्म की एक शक्ति है जिसके द्वारा सब मोहित अथवा भ्रमित होते हैं और जिसके प्रभाव से यह अनेकता प्रतीत होती है । हम माया के बारे में अधिक कुछ नहीं कह सकते बल्कि यह अनिर्वचनीय है । जीवात्माएं अनादिकाल से ही उसके प्रभाव में हैं क्योंकि हम यह नहीं कह सकते कि वे कब इसके प्रभाव में आई और, ब्रह्म ने तो एक से अनेक होने के लिए और यह खेल अथवा लीला रचने के लिए यह सब जादूगरी की है । माया 'ब्रह्म' से अलग नहीं है बल्कि ब्रह्म ही मायावी है अर्थात् माया शक्ति वाला है ।

शिव योगी- आपने अभी जो-कुछ कहा है, उस पर किंचित विचार कीजिए । यदि जीवात्माएं अनादि काल से माया के प्रभाव में हैं और अविद्या में हैं तब तो वे अनन्त काल तक रहेंगे भी क्योंकि जो अनादि है, वह अनन्त काल तक रहता भी है, तब तो अविद्या से छूटने का पुरुषार्थ करना ही व्यर्थ है । पुनश्च, ब्रह्म यदि मनुष्य को माया अथवा भ्रम में डालने वाला है तो फिर जीवात्मा से छुड़ाने वाला कौन है ? तब तो यह ही ब्रह्म से अधिक प्रिय और अच्छा हुआ ? परन्तु आप तो ब्रह्म से भिन्न है आप ने कहा कि ब्रह्म ही चंचल है और दूसरों को भ्रम में डालकर तमाशा करता है, चाहे वह भ्रम के कारण दुःखी भी हों ! पुनश्च, आप कहते हैं कि 'माया' के बारे में भी अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार तो यह ज्ञान ही वास्तव में मिथ्या है, भ्रम पर आधारित है और

अधूरा है और जिसे आप 'ब्रह्म' या 'परमात्मा' या 'आत्मा' कहते हैं, उसकी निन्दा करने वाला है और मनुष्य से श्रेष्ठ पुरुषार्थ छुड़ाने वाला है।

अद्वैत वेदान्ती-अच्छा तो आप ही बताइए कि 'माया' क्या है, 'ब्रह्म' क्या है, 'जीवात्मा' किसे कहते हैं और परमात्मा की सत्ता अलग कैसे है और परमात्मा कौन है ?

माया क्या है ?

शिव योगी-वास्तव में माया स्वरूप-विस्मृति का या काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का नाम है। यह ईश्वर की शक्ति नहीं है। बल्कि अनादि एवं अविनाशी जीवात्मा अपनी अल्पज्ञता के कारण तथा शरीर और विषय-पदार्थों के संग के कारण स्वरूप-विस्मृत होकर स्वयं को देह मानने लगता है और देह-अभिमान के वशीभूत होकर विषय-विकारों में बरतने लगता है। उसकी वह आत्म-विस्मृति अथवा उसका देह-अभिमान ही माया है। इससे ही मनुष्य को दुःख होता है। परमात्मा की शक्ति तो माया के विपरीत और विरुद्ध है। परमात्मा 'मायावी' नहीं है। वह तो ज्ञान का सागर, शान्ति का सागर, आनन्द का सागर, प्रेम का सागर और सर्वशक्तिमान् है और मनुष्यात्माओं को मार्ग-प्रदर्शना देकर माया से मुक्त कराने वाला होने के कारण 'शिव' कहलाता है।

वह 'शिव' ज्योतिस्वरूप, मायातीत, ज्योति-बिन्दु, अनादि और अविनाशी है और ब्रह्मलोक का ही निवासी है। वहाँ से वह धर्म-ग्लानि के समय अवतरित होकर मनुष्यों को वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग सिखाता है। 'ब्रह्म-तत्त्व' आत्माओं से भी भिन्न है और परमपिता परमात्मा शिव से भी भिन्न वह तो ब्रह्मलोक में व्यापक एक अखंण्ड ज्योति-महतत्त्व है जिसमें आत्माएं निर्वाण अवस्था में रहती हैं

और परमपिता परमात्मा शिव भी वास करते हैं। अत: ब्रह्म और परमात्मा में धाम और धामी का तथा जड़ और चेतन का भेद है। आत्मा एक नहीं हैं बल्कि आत्माएं अनादि काल से अनेक हैं और भिन्न-भिन्न गुण-कर्म-स्वभाव वाली हैं। इन सभी बातों को ठीक रीति से जानकर हम परमधाम अथवा ब्रह्मलोक के वासी परमपिता परमात्मा शिव से योग-युक्त होते हैं अर्थात् उसकी स्मृति में स्थित होने का अभ्यास करते हैं और उससे हम आध्यात्मिक शक्ति तथा शान्ति लेते हैं और माया पर विजय प्राप्त करते हैं। परन्तु आपने तो सब 'एक-ही-एक' कर दिया है और परमात्मा को भी मायावी कहा है। यह बड़ी भूल है। आप परमात्मा को आत्मा से अलग ही नहीं मानते तो वास्तविक योग का अभ्यास कैसे करोगे और योगाभ्यास के बिना तो पूर्व-जन्मों के विकर्म भी दग्ध नहीं हो सकते। आप तो जीवात्माओं को ही अलग-अलग नहीं मानते परन्तु हम कहते हैं कि जीवात्माएं सत्य ज्ञान की प्राप्ति और वास्तविक योग के अभ्यास से पवित्र एवं दिव्य-गुण सम्पन्न होंगी परन्तु फिर भी वे अलग-अलग ही रहेंगी क्योंकि उनकी पवित्रता तथा दिव्य-गुणों की पराकाष्ठा भी अलग-अलग होगी। परन्तु आप इसी भूल में हैं कि ब्रह्म ही एक तत्त्व है और आप भी ब्रह्म हैं। अब आप इस भ्रम को छोड़कर वास्तविक योग का अभ्यास कीजिए और श्रेष्ठ कर्म कीजिए। पिता परमात्मा को न मानना नास्तिकता है अथवा महादोष है अब आप इससे बचिए।

अद्वैत वेदान्ती- आपकी बातें युक्ति द्वारा सिद्ध तो होती हैं। विवेक इन्हें काफी हद तक मानता भी है। योग के अभ्यास द्वारा स्थायी आनन्द प्राप्त करने के लिए मेरे मन में प्रबल इच्छा भी है, परन्तु मेरे मन में केवल एक प्रश्न उठता है कि क्या परमात्मा नाम-रूप वाला हो सकता है जैसा

कि आपने अभी बताया है ? "हम आत्माएं 'शिव'अथवा परम सत्ता नहीं हैं,"-यह विचार तो कभी-कभी पहले भी मेरे मन में उठा करता था परन्तु परमात्मा यदि अविनाशी है और सर्वशक्तिमान् है और तीनों कालों में रहने वाला है तो क्या ज्योति-बिन्दु रूप अथवा ज्योतिर्लिंगम हो सकता है, जैसा कि आपने अभी कहा है ?"-यह प्रश्न मेरे मन में चल रहा है ? एक और बात यह भी मैं सोच रहा हूं कि आत्माओं के संस्कारों, विचारों आदि में जो मौलिक भिन्नता आप कह रहे हैं, यह तो मन-बुद्धि आदि अन्त:करण के कारण हैं जो कि प्रकृतिकृत है । जब आत्मा इससे मुक्त हो जाती है तब तो यह अन्तर भी नहीं रहता । तब तो आत्मा एक-समान अथवा एक ही हो जाती है अर्थात् लीन हो जाती हैं । और दूसरी बात यह कि यदि आत्माएं भिन्न-भिन्न हैं तो 'तत्त्वमसि' और 'सोऽहम्' आदि का क्या अर्थ है ?

परमात्मा को अलग मानकर योग लगाइए

शिव योगी- परमात्मा का रूप ज्योति-बिन्दु हो सकता है और है । हम यह बात अपने अनुभव के आधार पर तथा दिव्य-दृष्टि द्वारा प्राप्त भगवद्-साक्षात्कारों के आधार पर कहते हैं । इस बात को कई प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है । आप को हम कभी इस विषय पर अधिक स्पष्टीकरण देंगे । परन्तु शुभचिन्तक होकर हम इतना अवश्य कहेंगे कि परमपिता परमात्मा को जानकर उससे योग-युक्त होने का पुरुषार्थ अवश्य कीजिए वरना सद्गति प्राप्त नहीं हो सकेगी । सभी आत्माएं आपस में भाई-भाई हैं; परमात्मा ही हम सभी के परमपिता हैं । उनसे हममें पूर्ण पवित्रता,सुख और शान्ति का वर्सा प्राप्त हो सकता है । अत: परमात्मा को स्वयं से पृथक न मानना अथवा पिता न मानना गोया उसकी सम्पत्ति से वंचित रहना और अपना अकल्याण करना है । "सर्व खल्विदं

ब्रह्म" के सिद्धान्त से सब दैवी मर्यादा ही नष्ट हो गई है । अब इस मिथ्या मत को छोड़ कर शिव-मत पर चलिए, भगवान् की शरण लीजिए तो आप मुक्ति और जीवन्मुक्ति के भागीदार बनेंगे ।

इसके अतिरिक्त, मैं आपको यह बात भी स्पष्ट करूँगा कि मन-बुद्धि, आदि प्रकृतिकृत नहीं हैं और आत्मा से अलग भी नहीं हैं* और आत्मा परमात्मा में लीन भी नहीं होती । परन्तु आप साधारण विवेक से भी सोचिए कि यदि आप मन-बुद्धि को आत्मा से अलग और प्रकृतिकृत मानेंगे तब भी तो आपका यह सिद्धान्त कि-"एक आत्मा अथवा ब्रह्म के सिवा दूसरा कुछ नहीं है," खण्डित हो जाएगा और यदि आप मन-बुद्धि को आत्मा से अभिन्न मानेंगे अर्थात् आत्मा ही की विचार शक्ति को 'मन' मानेंगे और संस्कार भी आत्मा ही में तिरोहित (merged)मानेंगे तो फिर आत्माएं अलग-अलग तथा अनेक ही माननी होंगी क्योंकि सभी के संस्कार अलग-अलग हैं, और तब तो उनका एक-दूसरे में लीन होना भी असम्भव होगा क्योंकि अनादि काल से भिन्न-भिन्न संस्कारों वाली आत्माएं एक-दूसरे में कैसे लीन हो सकेंगी और वे कैसे अविनाशी कहलायेंगी ?

पुनश्च, 'तत्त्वमसि' या 'सोऽहम्'का वह अर्थ नहीं है जो आप लेते हैं । परमपिता परमात्मा शिव जब अवतरित होते हैं और मनुष्यात्माओं को ईश्वरीय ज्ञान देते हैं,वह उन्हें समझाते हैं कि आत्माएं पहले पवित्र थीं और अब पुन: उन्हें पवित्र बनना चाहिए । इस रहस्य को 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'तुम (आत्मा) पहले पवित्र थे'— इन शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया

---

* इसके बारे में 'योग की विधि और सिध्दि' नाम वाली पुस्तक में 'मन का महत्व' — यह लेख पढ़िये ।

है । और, इसे समझकर, आत्मा अपने आदिम स्वरूप को पवित्र मानकर पवित्र बनने का पुन: पुरुषार्थ करती है । इस रहस्य को 'सोऽहम्', अर्थात् 'मैं वहीं आत्मा हूं जिसका आदिम स्वरूप पवित्र था' । इस शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है । अब आप इन सभी गुह्य रहस्यों को समझकर, सहज राजयोग द्वारा पुन: पूर्ण पवित्र बनने का अभ्यास कीजिए ।

अद्वैत वेदान्ती- ठीक है, मैं इस बारे में अधिक मनन करूंगा । मुझे आपकी बातें बहुत पसन्द आई हैं और मेरे मन को यह बहुत जचती भी हैं । योग की अभिलाषा तो मुझे है ही । आज के वार्त्तालाप से काफी लाभ हुआ और कई रहस्य स्पष्ट हुए । मैं भी यह योग सीखूँगा । अच्छा, धन्यवाद ।

शिव योगी- धन्यवाद ! अच्छा ! ओम शान्ति !

भगवान् कहते हैं :-

"मैं एक हूँ"

परमात्मा के स्वरूप के विषय में मनुष्यों की भिन्न-भिन्न कल्पना रही है। आज भी संसार में जितने मनुष्य हैं परमात्मा के बारे में उतने ही मत हैं। परन्तु स्वयं सत्यस्वरूप परमात्मा अपने बारे में क्या कहते हैं, वास्तव में वही जानने और मानने के योग्य है। नीचे हम उन्हीं का मत व्यक्त कर रहे हैं —

भगवान् कहते हैं-"वत्सो, मैं एक हूँ। परन्तु मेरे इस कथन का कई लोगों ने यह विपरीत अर्थ ले लिया है कि संसार में जितने भी जीव-प्राणी हैं वे सभी एक भगवान् ही के भिन्न-भिन्न रूप हैं। इस प्रकार, वे मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा एक ही हैं, दो नहीं हैं; दोनों में कोई भेद नहीं है। वे कहते हैं कि सभी जीव-प्राणी हमारी ही 'निजात्मा' हैं। परन्तु, हे वत्सो, उनकी यह मान्यता बिल्कुल ग़लत है क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष है कि सभी आत्माएं भिन्न-भिन्न गुण, कर्म, स्वभाव और प्रारब्ध वाली हैं, वे एक नहीं हैं अत: बल्कि अनेक हैं। अत: 'मैं एक हूँ'- मेरे इस कथन का भाव यह है कि लौकिक जन्म लेने वाली, लौकिक कर्म करने वाली, सुख-दु:ख भोगने वाली, माया के वशीभूत होने वाली, अल्पज्ञ, असमर्थ, इच्छा, तृष्णा और गम-द्वेष वाली आत्माएं तो अनेक हैं, परन्तु उन सब से न्यारा मैं एक ही हूँ। लौकिक जन्म-मरण से रहित सुख-दु:ख में न आने वाला, लौकिक कर्म न करके दिव्य ही कर्म करने वाला, मायातीत, ज्ञान का सागर, शान्ति का सागर, आनन्द का सागर, प्रेम का सागर, सर्वशक्तिमान, इच्छा तथा राग द्वेष रहित मैं परिपूर्ण परमात्मा एक ही हूँ, मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं। अन्य सभी जीव-प्राणी रचना हैं, मैं 'रचयिता'(दाता) केवल एक ही हूँ। अन्य सभी आत्माएं मेरी अविनाशी सन्तति हैं, उनका अविनाशी माता-पिता मैं एक ही हूँ। जब अन्य सभी

माया और दु:ख के बन्धन में बँध जाती हैं तो उन बन्धनों से सभी को छुड़ाने वाला, मैं सदा-मुक्त परमात्मा एक ही हूँ। मैं एक ही 'शिव' अर्थात् कल्याणकारी हूँ, अन्य सभी का कल्याण मुझ द्वारा ही होता है।

अत: परमात्मा एक ही है (God is one) इसका यह भाव लेना कि कुत्ता-बिल्ली, सर्प, बिच्छू, चोर-लुटेरा, साधु-ठग, सब एक भगवान् ही के रूप हैं, बिल्कुल उल्टा भाव लेना है क्योंकि वास्तव में तो ये सभी भिन्न-भिन्न संस्कारों, कर्मों और प्रारब्ध वाली आत्माएँ हैं, और मैं इन सबसे न्यारा एक ही हूँ। मैं सभी मनुष्यों का परम पूज्य हूँ। जीव-प्राणी अनेक हैं, नर-नारी अनेक हैं, साधु-सन्त अनेक हैं, देवी-देवता भी अनेक हैं, परन्तु देवों का देव मैं परमात्मा, जो कि इन सभी से परम (श्रेष्ठ) हूँ, एक ही हूँ। ये सभी साकार अथवा व्यक्त आत्माएँ मेरा रूप नहीं हैं, मैं इन से अलग, निराकार, ज्योति-स्वरूप, जन्म-मरण से न्यारा, ज्योति-बिन्दु शिव एक ही हूँ जिसकी पूजा भारतवासी शिव-लिंग के रूप में करते हैं।

वत्सो, इस संसार में आप देखते हैं कि एक व्यक्ति दूसरे को दु:ख भी देता है, एक लुटेरा दूसरे का धन लूट लेता है, एक हत्यारा दूसरे का खून कर देता है, एक कुत्ता किसी मनुष्य को काट भी लेता है, अत: सभी को 'निजात्मा' मानना अथवा सभी को भगवान् ही के विभिन्न रूप मानना भूल है क्योंकि यदि सब निजात्मा होते तो दु:ख न देते (एक ही आत्मा अपने आपको दु:ख देना नहीं चाहती बल्कि सुख चाहती है) और भगवान् भी सभी का कल्याण करने वाले तथा सर्व-श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव वाले हैं। अत: सर्प, बिछू, चोर-लुटेरे आदि को भगवान् का रूप मानना तो गोया भगवान् को न जानने के कारण भूल से शैतान को भगवान् मानने के तुल्य है।

'मैं एक हूँ'– के बारे में दूसरी ग़लत-फहमी

भगवान् कहते हैं- वत्सो, कई लोगों ने मेरे इस कथन का यह भाव लिया है कि 'परमात्मा तो एक है' परन्तु अन्य सभी आत्माएं परमात्मा के अंश हैं। वे मानते हैं कि जैसे सागर में बुदबुदे उत्पन्न होते अथवा लहरें उठती हैं वैसे ही सभी आत्माएं परमात्मा से ही निकली हैं और सभी उस परमात्मा में ही लीन हो ज़ायेंगी। परन्तु, हे वत्सो ! वास्तव में ये धारणा भी ग़लत ही है क्योंकि आत्माओं को बुदबुदों समान मानना तो गोया उन्हे अविनाशी न मानने की भूल करना है। इसके अतिरिक्त, यह मानना कि परमात्मा के अंश अथवा टुकड़े होते हैं गोया परमात्मा को भी विनाशी मानना है। यदि इस प्रकार, परमात्मा असंख्य आत्माओं के रूप में अंशीभूत हो जाए, तब तो 'परमात्मा' नाम का तो अस्तित्त्व ही नहीं रहेगा ? बल्कि सभी आत्माएं ही रहेंगी। वत्सो, सागर के बुदबुदों में तो सागर के जैसे गुण होते हैं परन्तु आत्माएं तो परमात्मा के समान सर्वज्ञ, पूर्ण पवित्र, सदा-मुक्त, दुःख-सुख से न्यारी या कर्मातीत नहीं हैं। अतः आत्माओं को परमात्मा के अंश मानना अज्ञानता है। वत्सो, मैं एक हूँ- मेरे इस कथन का वास्तविक भाव तो यह है कि सभी आत्माएं मेरा 'वंश' हैं और उनका पिता मैं एक हूँ। मैं स्वयं अंशभूत होकर माया से मोहित या पतित नहीं बनता बल्कि आत्माएं रूपी-वंश जब पतित बन जाते हैं तब उसको पावन करने वाला मैं परमात्मा एक ही हूँ। इसलिए 'मैं एक हूँ'का सही अर्थ यह है कि मैं पतित-पावन एक हूँ, मैं सद्गतिकारी एक हूँ, मैं सभी आत्माओं का परमपिता एक हूँ, देवों का देव एक हूँ, कभी भी पतित न होने वाला, अज्ञान या तमोगुण से प्रभावित न होने वाला मैं ज्ञान का सागर एक हूँ। यों तो सभी आत्माएं भी ज्योंति-बिन्दु रूप हैं परन्तु तीनों लोकों में जितनी भी आत्माएं हैं, उनका नाथ (त्रिलोकीनाथ अथवा

त्रिभुवनेश्वर) मैं शिव एक हूँ।

'मैं एक हूँ'- के बारे में तीसरी भ्रान्ति

वत्सो, 'मैं एक हूँ'- इसका कई लोग यह ग़लत अर्थ लेते हैं कि 'अनेकानेक आत्माओं के एक ही परमात्मा सर्वव्यापक है। वे कहते हैं कि जड़-जंगम और चेतन-अचेतन अखण्ड रूप से सभी में व्यापक होने के कारण ही परमात्मा एक है।'परन्तु वास्तव में उनकी यह मान्यता ग़लत है क्योंकि मैं सभी में व्यापक नहीं हूँ, न ही सभी मुझ में व्यापक हैं बल्कि मैं तो परमधाम का वासी हूँ, जहाँ से ही मैं इस सृष्टि में धर्म-ग्लानि के समय अवतरित होता हूँ। वत्सो, यदि मैं सब में व्यापक होता तो सभी प्राणी आनन्द, शान्ति और प्रेम आदि से परिपूर्ण होते। परन्तु आप जानते हैं कि वास्तव में ऐसा है नहीं। अत: कुत्ते में, बिल्ली, में सर्प में, मगरमच्छ में, हिंसक शेर में तथा हत्यारे डाकू में भी मुझे व्यापक मानना गोया मुझे न मानना है। इन सभी में तो आत्माएं व्यापक हैं, मैं तो इन सबसे न्यारा हूँ और अधर्म तथा आसुरी सम्प्रदाय का विनाश करने वाला और सत् धर्म यथा दैवी सम्पदा की स्थापना करने वाला हूँ। मुझे तो 'सर्वोच्च' कहा गया है और मैं सभी का मात-पिता हूँ, न कि सभी में व्यापक तत्त्व। सभी योनियों में मुझे मानना तो गोया मेरी ग्लानि करना है। **अत: मैं एक हूँ – मेरे इस कथन का वास्तविक भाव यह है कि अन्य सभी आत्माएं तो देह-धारी हैं, परन्तु अयोनि और स्वयं-भू, अशरीरी और अकाय केवल मैं एक ही हूँ। सभी आत्मायें कोई-न-कोई कर्म-जन्य देह लेती हैं। परन्तु मैं एक ही कर्मतीत हूँ और इसलिए मैं एक ऐसा आत्मा हूँ जो कि कोई 'अपना' शरीर नहीं लेता।**

वत्सों, 'मैं एक हूँ' इस प्रकार मेरे इस महावाक्य का सत्य अर्थ जान कर सभी को मुझ एक ही की शरण लेनी चाहिए क्योंकि मुझ

एक पिता ही से सम्पूर्ण पवित्रता सुख और शान्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त हो सकता है। 'मामेकं शरणं व्रज'-इन शब्दों में मेरी जो आज्ञा व्यक्त होती है, उसका पालन करने में ही मनुष्यात्माओं का कल्याण है। वरना स्वयं को एक भगवान् ही का रूप मानने से, स्वयं को एक ही परमात्मा का अंश मानने से या स्वयं में एक व्यापक परमात्मा मानने से मनुष्य न तो मुझ एक सर्वशक्तिमान से योग-युक्त हो सकता है और न ही मुझ एक परमपिता से मुक्ति तथा जीवन्मुक्ति रूपी ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त कर सकता है।"

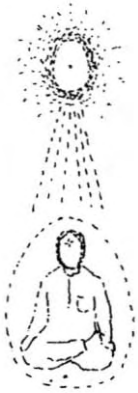

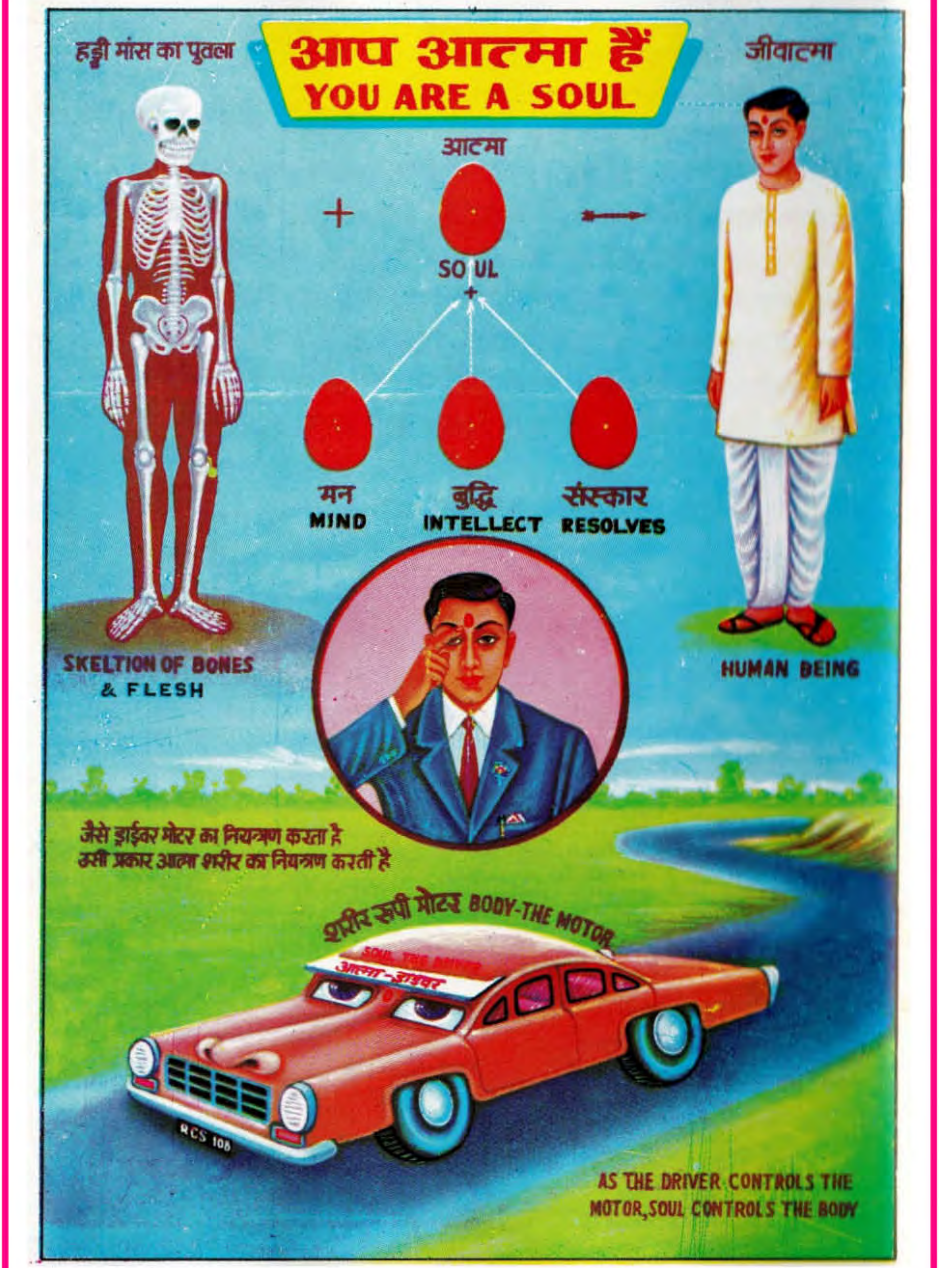
हड्डी मांस का पुतला
आप आत्मा हैं
YOU ARE A SOUL
जीवात्मा
आत्मा
SOUL
मन
MIND
बुद्धि
INTELLECT
संस्कार
RESOLVES
SKELTION OF BONES
& FLESH
HUMAN BEING
जैसे ड्राईवर मोटर का नियन्त्रण करता है
उसी प्रकार आत्मा शरीर का नियन्त्रण करती है
शरीर रूपी मोटर BODY-THE MOTOR
आत्मा-ड्राइवर
MCS 108
AS THE DRIVER CONTROLS THE
MOTOR, SOUL CONTROLS THE BODY